विक्रमाङ्कदेवचरितचर्चा

अर्थात्

महाकवि-बिल्हण-कृत

विक्रमाङ्कदेवचरित काव्य की आलोचना

लेखक

पण्डित महावीरप्रसाद द्विवेदी

प्रकाशक

इंडियन प्रेस, प्रयाग।

द्वितीयावृत्ति] १९१० ई० [मूल्य ≡)

Printed and Published by Punch Kory Mitra,
at the "Indian Press, Allahabad.

भूमिका ।

इस निबन्ध में जहाँ कहीं हमने बिल्हण के प्रतिकूल कुछ कहा है उसे पाठक बिल्हण की अप्रतिष्ठा का कारण न समझें । किसी की रचना की आलोचना करने में समालोचक यदि शुद्ध हृदय से अपनी सम्मति प्रकट करे तो उससे उसकी अप्रतिष्ठा नहीं होती । बिल्हण की अप्रतिष्ठा या निन्दा करने का विचार तो दूर रहा, उलटा हमने उनका परिचय हिन्दी जाननेवालों से करा कर उनकी ख्याति को बढ़ाने का प्रयत्न किया है ।

जुही, कानपुर |
२३ जनवरी ०७ |

महावीरप्रसाद द्विवेदी ।

विक्रमाङ्कदेवचरितचर्चा।

उपोद्घात।

हमारी नैषध-चरित-चर्चा को प्रकाशित हुए ६ वर्ष हुए। उसके अन्त में हमने यह कहा था कि यदि वह निबन्ध उपयोगी समझा गया तो वैसे ही और निबन्ध भी लिखने का हम यत्न करेंगे। हमारे लिए यह उत्साह की बात है कि उसे अनेक सुयोग्य सज्जनों ने पसन्द करके और भी वैसे ही निबन्ध लिखने के लिए हमसे अनुरोध किया। अतएव उनकी इच्छा पूर्ण करने के लिए हमें यह लेख लिखे तीन वर्ष हुए। हमारी इच्छा थी कि हम इसे क्रम क्रम से सरस्वती में प्रकाशित करें; परन्तु उसमें स्थान मिलने की आशा न देख इसे अब हम अलग ही प्रकाशित करते हैं।

संस्कृत-ग्रन्थों की समालोचना हिन्दी में होने से यह लाभ है कि समालोचित ग्रन्थों का सारांश और उनके गुण-दोष पढ़नेवालों को विदित हो जाते

हैं। ऐसा होने से सम्भव है कि संस्कृत में मूल ग्रन्थों को देखने की इच्छा से कोई कोई उस भाषा का अध्ययन करने लगें; अथवा उनके अनुवाद देखने की अभिलाषा प्रकट करें। अथवा यदि यह कुछ भी न हो; संस्कृत का प्रेममात्र उनके हृदय में अङ्कुरित हो उठे; तो उससे भी थोड़ा बहुत लाभ अवश्य ही है।

नैषध-चरित-चर्चा के विषय में जिन विद्वानों ने हमको पत्र लिखे। और विशुद्ध-हृदय से, उत्साह-वर्द्धक वाक्यों में, सूचनायें कीं, उनको हम धन्यवाद देते हैं। इस निबन्ध के लिखने में हमने उनकी सूचनाओं को सादर स्वीकार किया है। हम उनका भी धन्यवाद करते हैं जिन्होंने नैषधचरितचर्चा को अक्षम्य दोषों से दूषित पाया। इसमें उनका कोई दोष नहीं। विक्रमाङ्कदेवचरित के कर्ता बिल्हण ने बहुत ठीक कहा है—

द्वेष्यैव केषामिह चन्द्रखण्डविपाण्डुरा पुंड्रकशर्करापि !

अर्थात् चन्द्रमा के समान उजली बनारसी शर्करा से भी कोई कोई पुरुष द्वेष करने लगते हैं।

आधुनिक विद्वानों ने संस्कृत में जिस जीवन-चरित का पहले पहल पता लगाया वह हर्षचरित

है। उसमें प्रसिद्ध कवि बाणभट्ट ने राजा हर्षवर्धन का चरित गद्य में लिखा है। उसके अनन्तर बहुत वर्षों तक और किसी दूसरे चरित का पता नहीं लगा। कोई ३० वर्ष हुए डाकृर बूलर और डाकृर जकोबी राजपूताना में प्राचीन संस्कृत पुस्तकों की खोज करने गये। वहाँ जैसलमेर के क़िले में ओसवाल जैनों के बृहज्-ज्ञानकोश नामक पुस्तकालय में ताड़ के पत्तों पर लिखी हुई विक्रमाङ्कदेव-चरित की एक पुस्तक उन्हें मिली। जीवनचरितों में हर्षचरित के अनन्तर यह दूसरी पुस्तक है। इस के कर्नाटक प्रान्त के प्राचीन कल्याण नगर के राजा विक्रमाङ्कदेव का पद्यात्मक चरित है। विक्रमाङ्कदेव ही की सभा के कवि बिल्हण ने इसकी रचना की है। बिल्हण काश्मीरी थे। वे ग्यारहवीं शताब्दी में हुए हैं। विक्रमाङ्कदेवचरित की पुस्तक, जो जैसलमेर में पूर्वोक्त डाकृरों को मिली, १२८६ ईसवी की लिखी हुई है; जिससे यह सिद्ध होता है, कि बिल्हण के केवल दोही सौ वर्ष पीछे वह लिखी गई थी। जबसे विक्रमाङ्कदेवचरित का पता लगा तबसे आज तक कुमारपालचरित, गौडवध, हम्मीरवध और नवसाहसाङ्कचरित आदि और कई

ऐतिहासिक काव्य मिले और प्रकाशित हुए हैं। इनमें से कुमारपालचरित और गौडवध प्राकृत भाषा के काव्य हैं। नवसाहसाङ्कचरित में ऐसी बातें हैं जिनका करना मनुष्य की शक्ति के बाहर है, हम्मीरवध, विक्रमाङ्कदेवचरित की अपेक्षा बहुत छोटा और उससे कई बातों में हीन भी है। अतएव आजतक प्राप्त हुए संस्कृत भाषा में लिखे गये जीवनचरितरूपी पद्यात्मक काव्यों में विक्रमाङ्कदेव-चरित का पहला नम्बर है। इसी लिए उसके विषय में हिन्दी जाननेवालों के लिए हमने यह निबन्ध लिखना उचित समझा। नैषधचरितचर्चा में जिस नवसाहसाङ्कचरित का नाम हमने लिखा है वह श्रीहर्ष-कृत है; और जिस नवसाहसाङ्कचरित का उल्लेख यहाँ पर हमने किया वह परिमल, उपनाम पद्मगुप्त कृत है। जैसलमेर के पुस्तकालय के सूचीपत्र में श्रीहर्ष-कृत नवसाहसाङ्कचरित का भी नाम पाया जाता है, जिससे यह सूचित होता है कि किसी समय वह पुस्तक भी उस पुस्तकालय में विद्यमान थी; परन्तु अब वह वहाँ नहीं है। उसमें गौड़देश के राजाओं का चरित है। यदि वह चरित मिलता तो सम्भव है कि अनेक ऐतिहासिक बातों

का पता लग जाता, और उसके साथही श्रीहर्ष की अप्रतिम कविता का भी अलभ्य लाभ होता।

प्राचीन काल में संस्कृत का प्रचार, इस देश में, अधिकता से था। उस समय अनेक विद्वान् संस्कृत विद्या की पराकाष्ठा को पहुँच कर अपना यश देश देशान्तरों में पहुँचाते थे और नाना प्रकार के ग्रन्थ लिखकर अपना नाम अजरामर करने का प्रयत्न करते थे। राजाओं के यहाँ उनको आश्रय मिलता था; अतएव जीविका का प्रबन्ध हो जाने से वे लोग स्वच्छन्दतापूर्वक पुस्तकावलोकन और पुस्तक-निर्म्माण में अपना समय व्यतीत करते थे। प्रायः कोई भी माण्डलिक राजा ऐसे न थे जिनकी सभा में एक एक दो दो संस्कृत के विद्वान् और कवि न रहे हों। इस पर भी संस्कृत भाषा में जीवनचरितों की इतनी कमी देखकर आश्चर्य्य होता है। प्रत्येक राजा के आश्रित कवि अथवा विद्वान् पण्डित यदि अपने आश्रय देनेवाले का चरित लिखते तो उसके साथ वे अपना भी नाम चिरस्मरणीय कर जाते। जीवनचरितों का प्रायः अभाव सा देखकर यह अनुमान होत है कि विक्रमाङ्कदेवचरित के समान ग्रन्थ यदि लिखे गये थे

तो दो चार को छोड़ कर शेष सब राजविप्लव में नष्ट हो गये; अथवा मनुष्यों के चरित की ओर लोगों की अनास्था के कारण किसी ने उनके प्रचार का प्रयत्नही नहीं किया; अतएव उनकी हस्त-लिखित प्रतियाँ जहाँ की तहाँ हीं पड़े पड़े नष्ट हो गईं। यदि इस प्रकार के ग्रन्थ लिखेही नहीं गये तो उसका यह कारण हो सकता है, कि प्राचीन कवि और विद्वान्, पौराणिक पुरुषों ही को आदर की दृष्टि से देखते थे और उन्हीं को इस योग्य समझते थे, कि उनके विषय में वे कविता लिखें और उसके द्वारा अपनी वाणी को पवित्र करें। लौकिक पुरुषों का चरित लिखना शायद उन्होंने अपनी कवित्व शक्ति और विद्वत्ता का अपव्यय करना समझा था। इसीसे शायद पौराणिक पुरुषों के सम्बन्ध में सैकड़ों काव्य पाये जाते हैं पर दूसरों के सम्बन्ध में उनका प्रायः अभाव सा है। प्राचीन पण्डितों ने राम, कृष्ण, अर्जुन, युधिष्ठिर, नल, पतञ्जलि इत्यादि ही के चरित को ग्रन्थबद्ध करने के योग्य समझा है; दूसरों के चरित को नहीं। इन पुरुषों के चरित में अनेकानेक आश्चर्यदायक और उपदेशपूर्ण बातों के कहने का अवसर मिलने और सर्वसाधारण की

इन पर विशेष आस्था होने से शायद उन्होंने अपने ग्रन्थों के अधिक लोकप्रिय होने की सभावना समझी। अस्तु।

विक्रमाङ्कदेवचरित, जिस पर हम यह निबन्ध लिख रहे हैं, जीवनचरितों में गिना तो अवश्य जा सकता है; परन्तु उसमें चरितसम्बन्धी सामग्री बहुत नहीं है। कवि ने साहित्य-शास्त्र के नियमों का अनुसरण करके सर्ग के सर्ग ऋतु, जल-विहार, वाटिका-विहार, सायं और प्रातःकाल आदि के वर्णन से भर दिये हैं। इस काव्य में सब १८ सर्ग हैं; उनमें से यदि कवि अप्रासङ्गिक बातों का वर्णन न करता तो केवल आठ नौ सर्ग में पुस्तक समाप्त हो गई होती। सातवें से तेरहवें सर्ग तक की तो कोई आवश्यकता ही न थी; उनके न होने से विक्रमाङ्क के चरित-वर्णन में कुछ भी न्यूनता न आती। परन्तु ऋतु और नायिका के सर्वाङ्ग आदि का वर्णन महाकाव्य का लक्षण माना गया है; इस लिए बिल्हण को इतने सर्ग और बढ़ाने पड़े। आदि से लेकर अन्त तक इस काव्य के लिखे जाने की प्रणाली ऐसी आलङ्कारिक और अतिशयोक्तियों से पूर्ण है कि

कहीं कहीं वर्णन करने के योग्य मुख्य मुख्य बातें भी छूट गई हैं और यदि नहीं भी छूटीं तो अप्रासङ्गिक विषयों के वर्णन से ऐसी ढक सी गई हैं कि उनका पता लगाना कठिन सा हो गया है। एक जगह लिखा है कि विक्रमाङ्कदेव ने अपने प्रतिपक्षी चोल देश के राजा का पूरा पूरा पराभव करके उस देश को अपने अधीन कर लिया। आगे थोड़ी दूर जाकर उसी चोल देश पर विक्रमाङ्कदेव की दूसरी चढ़ाई का वर्णन है। पर कवि ने सन् संवत नहीं दिया कि कौन बात किस समय हुई। कहीं लिख दिया, 'कुछ दिन के अनन्तर'; कहीं, 'बहुत दिन के अनन्तर'; कहीं कुछ, कहीं कुछ। विक्रमाङ्कदेव और उसके पिता आहवमल्ल की कवि ने ऐसी प्रशंसा की है जिसका ठिकाना नहीं। वे राम, कृष्ण, युधिष्ठिर, नल और दुष्यन्त के समान आदरणीय, दोषरहित, वीर और विजयी बतलाये गये हैं। आहवमल्ल के पिता जयसिंह के विषय में तो बिल्हण ने यहाँ तक लिखा है कि इन्द्र ने अपने हाथ से उसके कण्ठ में पारिजात की माला पहना दी—

यशोवतंसं नगरं सुराणां कुर्वन्नगर्वः समरोत्सवेषु ।
न्यस्तां स्वहस्तेन पुरन्दरस्य यः पारिजातस्रजमाससाद ॥
सर्ग १, पद्य ८६ ।

लीजिए पारिजात की माला जयसिंह के गले में पड़ गई । विक्रमाङ्कदेव के आश्रय में रह कर उसकी और उसके वंशजों की स्तुति करना कवि का धर्म्म था; यह हमने माना; परन्तु फिर भी योग्यायोग्य का विचार करना भी उचित था। नितान्त असम्भव बातों का ऐतिहासिक काव्यों में न वर्णन करना ही अच्छा था । बात यह है कि, जिस दृष्टि से हम लोग इन काव्यों को अब देखते हैं उस दृष्टि से उस समय लोग न देखते थे । काव्य चाहे ऐतिहासिक हो, चाहे पौराणिक, चाहे काल्पनिक, उसे कवि लोग साहित्यशास्त्र के ही नियमानुसार लिखते थे और सम्भावना अथवा असम्भावना का विचार न करके नायक के चरित को, जहाँ तक उनसे हो सकता था तहाँ तक, उच्च से उच्च करके दिखलाते थे। जान पड़ता है, इन्हीं कारणों से ज़िल्हण ने चालुक्य-वंशीय राजाओं को अमानुषी कृत्य करनेवाले बतलाया है । अस्तु; अप्रासङ्गिक बातों और

अत्युक्तियों को निकाल डालने पर भी विक्रमाङ्कदेव-चरित में, फिर भी, बहुत कुछ ऐतिहासिक तत्त्व शेष रह जाता है। और जो कुछ रह जाता है वह काल्पनिक नहीं किन्तु यथार्थ है। उसकी सत्यता का प्रमाण चालुक्यों के उन शिलालेखों और ताम्र-पत्रों में मिलता है जो कल्याण में पाये गये हैं। इन लेखों में चालुक्य-वंश के राजाओं की जो नामावली इत्यादि है वह विक्रमाङ्कदेवचरित की नामावली से मिलती है। इसके अतिरिक्त और और बातें भी जो उनमें पाई जाती हैं वे प्रायः सभी बिल्हण के काव्य में वर्णन की गई हैं। इसी-लिए, प्राचीन इतिहास के रूप में, विक्रमाङ्कदेव-चरित, दोषों के रहते भी, बहुत ही उपयोगी है। उसकी उपयोगिता ही का विचार करके डाक्टर बूलर ने उसे बड़े परिश्रम से सम्पादित और अपनी लम्बी चौड़ी भूमिका के साथ प्रकाशित किया है। इस निबन्ध के लिखने में डाक्टर साहब की भूमिका से हमको बहुत सहायता मिली है। बहुत सी सामग्री हमने उसीसे ली है।

विक्रमाङ्कदेवचरित में एक बात यह सब से अच्छी है कि कवि ने इसमें अपना, अपने कुटुम्ब

का और अपने देश का बहुत कुछ वृत्तान्त दिया है। काव्य का अन्तिम सर्ग का सर्ग इस प्रकार के वर्णन से परिपूर्ण है। अतः विक्रमाङ्कदेव और उसके पूर्वजों के विषय में कुछ कहने के पहले हम बिल्हण का थोड़ा सा वृत्तान्त देना चाहते हैं।

बिल्हण की आत्म-कथा।

कवि ने इस काव्य के अन्तिम सर्ग में पहले काश्मीर की प्राचीन राजधानी का, फिर उसके दो एक राजाओं का, फिर अपने पूर्वजों का, और तदनन्तर अपना चरित संक्षेप से लिखा है। यहाँ पर, हम, पहले बिल्हण की कही हुई कथा का सारांश देकर, फिर उसके कथन का यथामति विचार करेंगे। कवि कहता है—

काश्मीर के नगरों में प्रवरपुर नामक मुख्य नगर है। वह वितस्ता (झेलम) और सिन्धु के सङ्गम पर बसा है। वह संसार के अन्यान्य नगरों से ही बढ़ कर नहीं; कुवेर की नगरी, लङ्का और अमरावती भी उसके सामने कोई वस्तु नहीं। वह अत्यन्त पवित्र पुरी है; वहाँ के ब्राह्मण महा विद्वान् हैं; वहाँ उष्णता कभी किसी को नहीं

सताती। वहाँ की स्त्रियाँ परम सुन्दरी हैं; विदुषी भी हैं; वे संस्कृत और प्राकृत दोनों बिना प्रयास बोल सकती हैं। वहाँ भट्टारक-मठ, संग्रामक-क्षेत्र-मठ और क्षेमगौरीश्वर का मन्दिर इत्यादि स्थल दर्शनीय हैं। वहाँ केसर और अंगूर बहुत उत्पन्न होते हैं; ब्राह्मणों के यहाँ सदा अग्निहोत्र हुआ करता है, नाटकालयों में स्त्रियों को अभिनय करते देख रम्भा, चित्रलेखा और उर्वशी आदि अप्सरायें लज्जित होकर सिर नीचा कर लेती हैं।

उस प्रवरपुर में अनन्तदेव नामक राजा हो गया है। वह बड़ा सत्यवक्ता, बड़ा उदार और बड़ा वीर था। उसने शकों को परास्त किया; गङ्गा के किनारे तक चढ़ाई की; और मानस सरोवर तक के दर्शन किये। चम्बा और त्रिगर्त इत्यादि प्रसिद्ध नगरों को उसने अपने अधीन किया। उसकी रानी का नाम सुभटा था। वह बड़ी दयावती, बुद्धिशीला और उदार थी। कुटिल लेखों के लिखने वाले न तो कायस्थ ही उसके पास से फूटी कौड़ी पा सके और झूटी सच्ची बातों के बनानेवाले न ख़ुशामदी विटोंही ने उससे एक पैसा पाया। उसने अपना सारा धन ब्राह्मणों को,

पण्डितों को और देवालयों ही को समर्पण किया। उसने वितस्ता के किनारे एक बहुत ही मनोहर शिवालय निर्म्माण कराया और एक महाविद्यालय भी अपने नाम से बनवाया। महारानी सुभटा के भाई का नाम क्षितिपति था। वह लोहर का राजा था। वह वीरता में भी अद्वितीय था और कवियों का सम्मान करने में भी।

सुभटा से अनन्तदेव का पुत्र कलश हुआ। उसने बाण कवि की बनाई कादम्बरी में उल्लिखित अच्छोद सरोवर को देखा; कैलाश के दर्शन किये; और यक्षों की नगरी अलका तक में प्रवेश किया। जब वह वहाँ से लौटा तब मानस सरोवर से कंचन के अनेक कमल अपने साथ लाया। स्त्री-राज्य को जीत कर वह चन्द्रभागा और यमुना के आगे कुरुक्षेत्र तक चला गया और उसे उसने अपने अधीन कर लिया।

कलश ने अपने पुत्र का नाम हर्षदेव रक्खा। हर्षदेव वीरों में अग्रणी हुआ और कविता में श्रीहर्ष से भी बढ़ गया। उसने अनेक भाषाओं में कविता की। कलश के दो पुत्र और हुए, एक का नाम उत्कर्ष; दूसरे का विजयमल्ल।

काश्मीर और काश्मीर के इतने राजाओं का वृत्तान्त लिख कर कवि अब अपने पूर्वजों का और अपना चरित वर्णन करता है।

प्रवरपुर से तीन मील के अन्तर पर जयवन नामक एक स्थान है। उसी के निकट खोनमुख नामक ग्राम है। उस ग्राम के चारों ओर केसर और अंगूर अधिकता से उत्पन्न होते हैं। वहाँ कुछ कौशिकगोत्रीय ब्रह्मज्ञ ब्राह्मण निवास करते हैं। काश्मीर को पवित्र करने ही के लिए माने उन्हें महाराज गोपादित्य ने मध्यदेश से लाकर बसाया है। उन ब्राह्मणों में अपने सद्गुणों से त्रिलोकी को पवित्र करनेवाला मुक्तिकलश नामक एक पवित्र ब्राह्मण हुआ। अग्निहोत्र करते समय उसके शरीर से पसीने की जो धारायें निकलीं उन्होंने कलियुग के कलुषरूपी धब्बों को धो सा डाला। चारों वेदों ने आकर उसके मुख-कमल में अपना घर बनाया। उसका पुत्र राजकलश हुआ। उसकी उदारता का अन्त न था। अतिथिही उसका सर्वस्व था। उसके पुत्र का नाम जेष्ठकलश हुआ। वह दया का समुद्र, साहित्यशास्त्र की जन्मभूमि, और शब्दशास्त्र का आचार्य हुआ। उसने व्याकरण के महाभाष्य की

टीका बनाई । उसकी सभा अनेक विद्यार्थियों से पूर्ण रहती थी। उसकी स्त्री का नाम नागादेवी था।

उस महात्मा के बिल्हण नामक पुत्र हुआ। जब से उसने मूंज की मेखला धारण की तभी से वेद की ऋचाओं के चित्र विचित्र उच्चारण के बहाने सरस्वती का कङ्कण उसके मुख में बजने लगा। सांग वेद, सांग व्याकरण और सम्पूर्ण साहित्य-शास्त्र उसके सर्वस्व हुए। उसकी विद्वत्ता की थाह लेना असम्भव हुआ। सच तो यह है कि ऐसा कोई भी विषय न था जो उसके बुद्धिरूपी निर्दोष दर्पण में प्रतिबिम्बित न हुआ हो। उसकी सरस और मधुर कविता उसकी कीर्ति के साथ देशदेशान्तरों में व्याप्त हो गई। उसके बड़े भाई का नाम इष्टराम था। अनेक राजाओं की सभाओं का वह आभूषण था। वह भी महाविद्वान् और महाकवि था। उसके छोटे भाई का नाम आनन्द था। उसके साथ विवाद करनेवाले कवियों की कीर्ति उसकी उक्तिरूपी कुल्हाड़ी से कट जाने पर फिर कभी न जुड़ सकी।

काश्मीर में अपनी कीर्ति को सब ओर फैला कर बिल्हण ने देशान्तर के लिए प्रस्थान किया।

पांचाल देश से होते हुए वह मथुरा पहुँचा, वहाँ पण्डितों को पराजय देकर कुछ दिन वृन्दावन में उसने निवास किया। ग्रामों में, नगरों में, राजस्थानों में, बस्तियों में और जङ्गलों में, बुद्धिमान् और मूर्ख, युवा और जरठ, स्त्री और पुरुष सब ने उसकी कविता को प्रेम से पाठ किया और पाठ करते करते वे आनन्द से उन्मत्त हो उठे। उसकी कीर्ति कान्यकुब्ज तक पहुँची और वहाँ से प्रयाग गई। इन दोनों स्थानों में उसने कुछ काल तक निवास किया। जो कुछ द्रव्य उसने अपने अपूर्व गुणों से सम्पादन किया था उसे उसने प्रयाग में दान कर दिया।

वहाँ से वह काशी पहुँचा। काशी में दुश्शील राजाओं के मुखावलोकन से उत्पन्न हुए पापों को उसने भागीरथी में धो डाला। कालिंजर के राजा पर विजय प्राप्त करने वाले डाहल के अधीश्वर कर्ण से जब उसकी भेंट हुई तब डाहल-नरेश ने उसके कविता-पीयूष को आकण्ठ पान किया। डाहल-नरेश के यहाँ प्रसिद्ध कवि गङ्गाधर को उसने परास्त किया। तदनन्तर अपनी वाग्धारा से अयोध्या को शीतल करके वह गुर्जरदेश की ओर गया; परन्तु

भोज की राजधानी धारा को वह न जा सका। मार्ग में कक्षाहीन, अपवित्र और अनुचित शब्दों को उच्चारण करने वाले गुर्जर-निवासियों को देखने से जो सन्ताप हुआ था उसका परिहार उसने सोमनाथ के दर्शनों से किया। शतशः राजाओं से मिलने की इच्छा से उसने दक्षिण की ओर यात्रा की। वह रामेश्वर तक गया। वहाँ से वह पीछे लौटा और छोटे छोटे राजाओं की ओर दृक्पात भी न करके केवल बड़े बड़े नरेशों की सभा को उसने अपने गमन से अलङ्कृत किया। इस प्रकार दक्षिणापथ में पर्य्यटन करते करते चालुक्य-वंशीय महाराज विक्रमाङ्कदेव की सभा में वह पहुँचा। वहाँ उसका सब से अधिक सम्मान हुआ; और उसे विद्यापति की पदवी मिली। तब से वह अनेक प्रकार के ऐश्वर्यों को भोग करते हुए वहीं रहने लगा। उस के यश की कहानियाँ दिग्गजों ने भी आनन्द से उन्मत्त होकर सुनीं। उस ने कर्णाटक के अधिपति विक्रमाङ्क अथवा विक्रमाङ्कदेव के लिए अपने प्रेम का उपहाररूपी यह काव्य बनाया। ईश्वर करे यह बुद्धिमानों के कण्ठ का आभूषण हो।

अभी तक बिल्हण ने अपने विषय में जो कुछ कहा सब तृतीय-पुरुष में कहा ; अब अपने आत्म-चरित का अन्त आप प्रथम-पुरुष में करते हैं—

सब कहीं मैंने अनन्त सम्पत्ति सम्पादन की ; सब कहीं मुझे पुण्यात्माओं के मिलने योग्य वर और आशीर्वाद मिले ; विपक्षियों के साथ विवाद करने में, सब कहीं, मेरा जय हुआ। 'अब मेरी यह इच्छा है कि, शीघ्र ही, मैं अपने देश के काश्मीरक विद्वानों से वार्तालाप करूँ। मैं राजाओं की कृपा का पात्र हुआ ; मेरा वैभव भी बहुत बढ़ा ; शास्त्रावलोकन भी मैंने किया ; प्रतिपक्षियों को परास्त भी मैंने किया। अब मेरी इच्छा भगवती जाह्नवी के दर्शन करने की है। हे नरपतिगण ! लक्ष्मी बिजली के समान चञ्चल है ; वह किसी प्रकार स्थिर नहीं की जा सकती। मृत्यु की सूचक दुन्दुभी, सब काल, सबके सिर पर बजा करती है। इसलिए सच्चे कवियों का सत्कार करो ; वही तुम्हारे कीर्तिरूपी शरीर की रक्षा करेंगे। उनसे विरोध करना छोड़ो ; उन्हीं की कृपा से तुम्हारा यश सब ओर फैलता है। देखो, प्रसन्न होकर कवियों ने राम के चरित को अजरामर कर दिया, और

अप्रसन्न होकर त्रैलोक्य-विजयी दस सिरवाले रावण की कीर्ति को धूल में मिला दिया !

यहाँ बिल्हण की आत्मकथा समाप्त हुई ।

बिल्हण ने अपने मुख से अपना जो चरित वर्णन किया है उससे यह सिद्ध है कि वह प्रवर-पुर से तीन मील दूर खोनमुख ग्राम में उत्पन्न हुआ था। उसके प्रपितामह का नाम मुक्तिकलश और पितामह का राजकलश था । वे दोनों अग्निहोत्री थे और वेदों में पारङ्गत थे । उसके पिता का नाम जेष्ठकलश था । उसने व्याकरण के महाभाष्य की टीका लिखी है। इस टीका का अभी तक पता नहीं लगा; और न अन्यत्र कहीं उसका नाम सुनने में आया। बिल्हण की माता का नाम नागादेवी था। उसके दो भाई और थे—बड़े का नाम इष्टराम और छोटे का आनन्द। वे दोनों विद्वान् और पण्डित थे। बिल्हण ने काश्मीरही में विद्याध्ययन किया। विशेष करके वेद, व्याकरण और अलङ्कार-शास्त्र में उसने प्रवीणता प्राप्त की।

जैसे इस समय पण्डित लोग अपने विद्याध्ययन की समाप्ति करके धनप्राप्ति की इच्छा से देश देशान्तरों में घूमने के लिए निकलते हैं, और दक्षिणा

के लोभ से एक राजा की सभा से दूसरे राजा की सभा में जाते हैं, उसी प्रकार बिल्हण के समय में भी कवि और पण्डित अपनी विद्या और कविता का परिचय देते हुए और विवाद करने की इच्छा रखने वाले पण्डितों से शास्त्रार्थ करते हुए दूर देशों को चले जाया करते थे। इस प्रकार के देशाटन में अर्थ की भी प्राप्ति होती है और तीर्थ तथा देवदर्शन से धर्म की भी। इन्हीं कारणों से बिल्हण ने भी काश्मीर छोड़ कर इस देश के और और भागों में पर्य्यटन किया।

काश्मीर छोड़कर पाञ्चाल होते हुए बिल्हण पहले मथुरा पहुँचे। वहाँ से गङ्गा को पार करके वह क़न्नौज गये; वहाँ से प्रयाग; और प्रयाग से काशी। काशी से आगे पूर्व की ओर वह नहीं बढ़े। वहाँ से दक्षिण की ओर वह राजा कर्ण के यहाँ आये। इस कर्ण की राजधानी दाहल में थी। किसी किसी का यह मत है कि चेदी अर्थात् चँदेरों ही का दूसरा नाम दाहल है। कुछ भी हो दाहल, बुँदेलखण्ड ही का कोई प्राचीन राजस्थान जान पड़ता है; क्योंकि, उसके राजा (कर्ण) के द्वारा कालिञ्जर का विजय किया जाना वर्णित है। कालिञ्जर, बाँदा के पास

है; वहाँ का प्राचीन क़िला अब तक वर्त्तमान है। दाहल के आगे बिल्हण ने अयोध्या का नाम लिखा है; परन्तु काशी से उतनी दूर दक्षिण आकर फिर उत्तर की ओर अयोध्या जाना असम्भव सा जान पड़ता है। बिल्हण ने अपनी वाग्धारा से अयोध्या का पवित्र किया जाना जो लिखा है उससे शायद किसी कविता से अभिप्राय है। सम्भव है, राजा कर्ण के यहाँ वह बहुत दिन तक रहे हों और वहाँ रामचन्द्र के सम्बन्ध में उन्होंने कोई काव्य लिखा हो। दाहल से धारानगरी बहुत दूर न थी; परन्तु भोज की कीर्ति को सुनकर भी बिल्हण वहाँ नहीं गये। प्राचीन शिलालेखों से विदित है कि अणहिलवाद के राजा भीमदेव प्रथम और कर्ण ने मिल कर पीछे से भोज पर चढ़ाई की थी। सम्भव है कर्ण के और भोज के बीच में वैमनस्य होने ही के कारण बिल्हण धारा को न गये हों। कर्ण की राजधानी को छोड़ कर बिल्हण अणहिल-वाद होते हुए सोमनाथ को गये और वहाँ से बेरावल में जहाज़ पर चढ़ कर दक्षिण भारतवर्ष के लिए उन्होंने प्रस्थान किया। यह नहीं कह सकते कि दक्षिण में कहाँ पर वह जहाज़ से उतरे।

सम्भव है कोङ्कन में गोकर्ण के पास हनोर में वह उतरे हों। वहाँ वह बहुत काल तक दक्षिण में घूमते रहे और घूमते घूमते रामेश्वर तक पहुँचे। वहाँ से लौटने पर कल्याण में विक्रमाङ्कदेव के यहाँ उन्हें आश्रय मिला; और वहीं उन्होंने विद्या-पति की पदवी पाई। जान पड़ता है, वृद्धावस्था तक बिल्हण कल्याण ही में रहे, क्योंकि अपने आत्मचरित में गङ्गा के तट पर निवास करने की उन्होंने अभिलाष प्रकट की है। इससे यह भी सिद्ध होता है, कि बिल्हण ने विक्रमाङ्कदेवचरित की रचना वृद्धावस्था में की।

विक्रमाङ्कदेव का दूसरा नाम विक्रमादित्य भी था। उसने १०७६ से ११२७ ईसवी तक कल्याण में राज्य किया इस बात से और काश्मीर के राजा अनन्त, कलश और हर्ष के वर्णन से प्रमाणित होता है कि ग्यारहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में बिल्हण ने देश-पर्य्यटन किया। बिल्हण ने जहाँ पर काश्मीर के राजा अनन्त का वर्णन किया है वहाँ 'आसीत्' इस भूतकालिक क्रिया का प्रयोग किया है, जिससे सूचित होता है कि, जिस समय विक्रमाङ्कदेवचरित लिखा गया, उस समय अनन्त की मृत्यु हो चुकी थी।

राजतरङ्गिणी में लिखा है कि ३५ वर्ष राज्य करके अनन्त ने अपने पुत्र कलश को सिंहासन पर बिठाया। यद्यपि उसने अपने पुत्र को राजा बनाया तथापि और १५ वर्ष तक वह राज्य-कार्य देखता रहा। तदनन्तर अपने पुत्र की दुःशीलता से तंग आकर वह विजयक्षेत्र को चला गया। विजयक्षेत्र जाकर, अपने पुत्र के द्वारा बहुत सताये जाने पर उसने आत्महत्या कर ली। जनरल कनिंहाम के अनुसार अनन्त १०२८ ईसवी में सिंहासन पर बैठा और १०८० में मृत्यु को प्राप्त हुआ। कलश को यद्यपि १०६२ ईसवी में राज-गद्दी हुई, तथापि उसने राज्य का काम काज अनन्त के विजयक्षेत्र चले जाने के अनन्तर, अर्थात् १०८० ईसवी में, आरम्भ किया। इससे सिद्ध है, कि विक्रमाङ्क-देवचरित की रचना बिल्हण ने १०८० ईसवी के अनन्तर की। यदि ऐसा न होता तो वह अनन्त के लिए आसीत् 'अर्थात्' 'था' का प्रयोग न करता। इसका प्रमाण और भी दो बातों से मिलता है। एक तो यह, कि विक्रमाङ्क-देवचरित में उस चढ़ाई का वर्णन नहीं है जो विक्रमादित्य ने नर्मदा के इस पार मध्यभारत

पर, १०८८ ईसवी में, की थी। इस चढ़ाई का वृत्तान्त एशियाटिक सोसायटी के जरनल के चौथे भाग में दिया हुआ है। यदि विक्रमाङ्कदेव-चरित लिखने के पहले ही विक्रमने यह चढ़ाई की होती तो बिल्हण ने अपने काव्य में उसका उल्लेख अवश्य किया होता। इस विषय का दूसरा प्रमाण राजतरङ्गिणी का सातवाँ तरङ्ग है। वहाँ ये तीन श्लोक हैं—

काश्मीरेभ्यो विनिर्यान्तं राज्ये कलशभूपतेः।
विद्यापतिं यं कर्णाटश्चक्रे पर्माडिभूपतिः॥ ९३६॥
प्रसर्पतः करटिभिः कर्णाटकटकान्तरे।
राज्ञोऽग्रे ददृशे तुङ्गं यस्यैवातपवारणम्॥ ९३७॥
त्यागिनं हर्षदेवं स श्रुत्वा सुकविबान्धवम्।
बिल्हणो वञ्चनां मेने विभूतिं तावतीमपि॥ ९३८॥

अर्थात् महाराज कलश के समय में बिल्हण ने काश्मीर छोड़ा। कर्णाटक के पर्माडि-नरेश ने उसे अपना प्रधान पण्डित बनाया। जब वह हाथी पर सवार होकर कटक में चलता था तब वहाँ के राजा के आगे उसके शीश पर छत्र दृष्टिगोचर होता था। उसने जब यह सुना कि महादानी काश्मीर-नरेश हर्षदेव कवियों को अपने बन्धु के

समान जानते हैं तब महाराज कर्णाटक की दी हुई उस विशेष विभूति को भी उसने वञ्चना समझा।

कल्याण के त्रिभुवनमल्ल विक्रमादित्य ही का दूसरा नाम पर्माडि है। अतएव यदि बिल्हण ने हर्षदेव का सिंहासन पर आसीन होना देखा तो यह निःसंशय सिद्ध हो गया कि उसने १०८८ ईसवी के पहले ही विक्रमाङ्कदेवचरित की रचना की।

राजतरङ्गिणी के तीन श्लोक, जो ऊपर दिये गये वे, उस समय की सूचना देते हैं जिस समय (अर्थात् १०६२ से १०८० तक) कलश नाम मात्र का राजा था। बिल्हण ने उसी बीच में काश्मीर छोड़ा होगा; उस समय नहीं जिस समय कलश ने राज्य का सूत्र अपने हाथ में ले लिया था; क्योंकि बिल्हण ने भारतवर्ष के अनेक भागों में भ्रमण किया है और विक्रमाङ्कदेवचरित लिखने के पहले कई वर्ष तक वह कल्याण में रहा है। ये सब बातें आठ वर्ष, अर्थात् १०८० ईसवी से १०८८ ईसवी के अभ्यन्तर, में न हुई होंगी। इन कारणों से यह अधिक सम्भव जान पड़ता है कि जिस समय कलश को नाम मात्र के लिए राज्य की प्राप्ति हुई थी उसी समय, अर्थात्

१०६२ ईसवी के कुछ काल पीछे, बिल्हण ने काश्मीर से प्रयाण किया। बीस पच्चीस वर्ष का समय एक काश्मीरी पण्डित के लिए भारत-वर्ष में घूमने और कल्याण में बहुत दिन तक रहने के लिए अधिक नहीं है। बिल्हण के कथन से सिद्ध है कि उसने विद्याध्ययन समाप्त करके काश्मीर से प्रस्थान किया। और विक्रमाङ्कदेव-चरित के अन्त में लिखा है कि उसने संसार के सब सुख भोग लिये; अतएव अब विरक्त के समान गङ्गा-तट पर वास करने की उसकी इच्छा है। उक्तियों से जाना जाता है कि विक्रमाङ्क-देवचरित को समाप्त करने के समय बिल्हण वृद्धावस्था को अवश्य पहुँच गये थे। यदि अधिक नहीं तो बिल्हण की उम्र उस समय ५० वर्ष की अवश्य रही होगी। इसमें कोई सन्देह नहीं है।

जो कुछ यहाँ तक लिखा गया उससे, हमारी समझ में, यह प्रमाणित होता है कि, बिल्हण ने अपना देश १०६५ ईसवी के लग भग छोड़ा और विक्रमाङ्कदेवचरित की रचना प्रौढ़ वय को प्राप्त होने पर, १०८५ ईसवी के लग भग, की।

विक्रमाङ्कदेवचरित के सिवा बिल्हण ने और भी ग्रंथ लिखे हैं; परन्तु उनका पता अभी तक नहीं लगा। शार्ङ्गधर-पद्धति में बिल्हण के नाम से अनेक पद्य उद्धृत हैं, जो इस काव्य में नहीं पाये जाते। इससे जान पड़ता है कि बिल्हण ने और कई ग्रंथों की रचना अवश्य की है। प्रोफ़ेसर आफ़रेट का मत है कि बिल्हण ने अलङ्कार-शास्त्र का भी एक ग्रंथ लिखा है।

विक्रमाङ्कदेवचरित के मिलने के पहले बिल्हण का नाम एक और छोटी सी पुस्तक के द्वारा पण्डितों को विदित था। इस पुस्तक का नाम बिल्हण-पञ्चाशिका है। कहीं कहीं इसका नाम चौर-पञ्चाशिका भी लिखा है। इस पञ्चाशिका की किसी किसी हस्त-लिखित पुस्तक में एक आख्यायिका है जिसे हम यहाँ पर देना उचित समझते हैं। वह इस प्रकार है—

गुजरात के राजा वीरसिंह के चन्द्रलेखा अथवा शशिकला नाम की एक कन्या थी। बिल्हण उसे पढ़ाते थे। दैवयोग से शशिकला और बिल्हण में परस्पर प्रेम हो गया और बिल्हण ने उसके साथ गान्धर्व विवाह कर लिया। जब यह समाचार

वीरसिंह को मिला तब उसने क्रोध में आकर बिल्हण को प्राणदण्ड देने की आज्ञा दी। बिल्हण ने शशिकला के स्मरण में वधस्थान को जाते जाते यह पञ्चाशिका बनाई। इस कविता का वृत्तान्त किसी प्रकार वीरसिंह तक पहुँचा और उसने कविता की अपूर्वता से अत्यन्त प्रसन्न होकर बिल्हण का अपराध क्षमा कर दिया। यही नहीं, किन्तु, अपनी कन्या का विधिपूर्वक उनके साथ विवाह भी कर दिया। अणिहलवार (अन्हिलव) वाड़ में वीरसिंह नाम का एक राजा अवश्य हो गया है; परन्तु फार्ब्स साहब की रासमाला के अनुसार उसकी मृत्यु ९२० ईसवी में, अर्थात् बिल्हण के १०० वर्ष पहले ही, हो चुकी थी। इसलिए वीरसिंह के यहाँ बिल्हण का रहना असम्भव सिद्ध होता है। अपने आत्मकथन में भी बिल्हण ने वहाँ रहने का उल्लेख नहीं किया।

किसी किसी पुस्तक में लिखा है कि बिल्हण ने मदनाभिराम नामक राजा की यामिनीपूर्णतिलका नामक कन्या के ऊपर यह पञ्चाशिका बनाई है। वहीं यह भी लिखा है कि, यह राजा पाञ्चालदेश के लक्ष्मीमन्दिर नामक नगर में हुआ

है; परन्तु इतिहास में अथवा शिलालेखों में आज तक इस राजा का नाम कहीं नहीं पाया गया। कोई कोई यह कहते हैं कि इस पञ्चाशिका का कर्ता चौर नामक कोई कवि हो गया है, परन्तु इसका भी प्रमाण कहीं नहीं पाया जाता।

"रहस्यसन्दर्भ" में लक्ष्मीमन्दिर की राजपुत्री यामिनीपूर्णतिलका का उल्लेख करके उसके और बिल्हण के स्नेह-संरम्भ की आख्यायिका एक दूसरे ही प्रकार से वर्णन की गई है। उसमें लिखा है कि मदनाभिराम राजा ने बिल्हण को अपनी कन्या का शिक्षक नियत करना चाहा; परन्तु जिसमें वे दोनों एक दूसरे को परस्पर देख न सकें, इसलिए बिल्हण से यह कहा, कि यामिनी-पूर्णतिलका कुष्ठ रोग से पीड़ित है और अपनी कन्या से यह कहा कि बिल्हण अन्धा है। यह कह कर दोनों के बीच में पर्दा डाल कर अध्ययन और अध्यापन कार्य्य उसने आरम्भ कराया। राजपुत्री बड़ी बुद्धिमती थी; अतएव थोड़े ही दिनों में वह नानालङ्कार और नाना-भाव-समन्वित काव्यादि में निपुण हो गई। एक बार सायङ्काल, पौर्णमासी के चन्द्रमा को देख कर, बिल्हण ने इस प्रकार कविता की—

नेदं नभो मण्डलमिन्दुराशिर्नैताश्च तारा नवफेनभङ्गाः ।
नाथ शशी कुण्डलितः फणीन्द्रो नायं कलङ्कः शयितो मुरारिः ॥

अर्थात् यह आकाश-मण्डल नहीं है; समुद्र है। ये तारे नहीं हैं; फेन के टुकड़े बिखरे हैं। यह चन्द्रमा भी नहीं है; कुण्डलना किये हुए शेष बैठा है। यह कलङ्क भी नहीं है; विष्णु सो रहे हैं!

इसके आगे एक और श्लोक बिलहण ने इस प्रकार कहा—

इन्दुमिन्दुमुखि ! लोकय लोकं; भानुभानुभिरमुं परिततम् ।
वीजितुं रजनिहस्तगृहीतं; तालवृन्तमिव नालविहीनम् ॥

अर्थात् हे चन्द्रमुखि! चन्द्रमा को देख। सूर्य्य की किरणों से सन्तप्त हुए संसार को शीतल करने के लिए, रात्रि ने, बिना नाल के ताड़ के पंखे के समान, मानो उसे हिलाने के लिए अपने हाथ में ग्रहण किया है!

इस प्रकार बिलहण की अपूर्व कविता को सुन कर राजकन्या को विदित हो गया कि बिलहण अन्धा नहीं है; उस विषय में उसके पिता ने उससे प्रतारणा की है। अतएव उसने बिलहण को देखा। उस दिन से परस्पर दोनों में प्रेम-सम्भाषण होने

लगा। कुछ दिन बाद दोनों का गान्धर्व-विवाह हो गया। जब यह गुप्त रहस्य राजा को विदित हुआ तब उसने बिल्हण के वध किये जाने की आज्ञा दी। इस पञ्चाशिका को बिल्हण ने वधस्थल ही में बनाया।

बिल्हण ने विक्रमाङ्कदेवचरित के अठारहवें सर्ग में इन आख्यायिकाओं से सम्बन्ध रखनेवाली न तो कोई बात ही कही, और न लक्ष्मी-मन्दिर को जाने अथवा वहाँ रहने ही का कोई उल्लेख किया। अतएव इस आख्यायिका की सत्यता अथवा असत्यता का निर्णय करना हम विचारवान् वाचकों हीं पर छोड़ते हैं। इस पञ्चाशिका की कविता विक्रमाङ्कदेवचरित की कविता से कुछ मिलती है। शार्ङ्गधर-पद्धति के कर्ता शार्ङ्गधर ने उस ग्रंथ में इस पञ्चाशिका से कई पद्य उद्धृत भी किये हैं। शार्ङ्गधर १४ वीं शताब्दी में, अर्थात् बिल्हण के चार ही सौ वर्ष पीछे, हुआ है। वह इसे बिल्हण-कृत ही बतलाता है। अतएव हमें उसके कथन के मानने में कोई आपत्ति नहीं जान पड़ती। इस पञ्चाशिका की कविता अत्यन्त ही सरस और हृदयाह्लादकारिणी है। उसकी उक्तियाँ

से पूर्वोक्त आख्यायिका सत्य प्रतीत होती है। बिल्हण कहते हैं—

अद्यापि तां नृपतिशेखरराजपुत्रीं
सम्पूर्णयौवनमदालसघूर्णनेत्रीम्।
गन्धर्वयक्षसुरकिन्नरनागकन्यां
स्वर्गादहो निपतितामिव चिन्तयामि ॥४५॥

अर्थात् स्वर्ग से गिरी हुई गन्धर्व, यक्ष, देवता, किन्नर अथवा नागकन्या सी पूर्ण-यौवनवती उस राजपुत्री को मैं अब तक (इस घोर विपत्ति के समय में भी) स्मरण कर रहा हूँ।

इससे सिद्ध होता है कि जिसकी चिन्तना बिल्हण को थी वह एक राजा की लड़की थी।

अद्यापि तां स्वभवनान्मयि नीयमाने
दुर्वारभीषणकरैर्यमदूतकल्पैः।
किं किं तया बहुविधं न कृतं मदर्थे
वक्तुर्न वार्यत इति व्यथते मनो मे ॥

अर्थात् यमदूतों के समान भयङ्कर हाथोंवाले मनुष्यों (वधिकों) के द्वारा अपने मन्दिर से मुझे लिये जाते देख उसने मेरे बचाने के लिए क्या क्या नहीं किया? उसका स्मरण होते ही मेरे मन को असह्य वेदना होनेलगती है।

इससे यह सूचित है कि वह बिल्हण वधिकों के द्वारा राजपुत्री के घर से निकाले गये थे। अस्तु। आज तक जो सुनते आये हैं कि "कवयः किन्न जल्पन्ति" उसके साथ ही यह भी कहना चाहिए कि "कवयः किन्न कुर्वन्ति"! वधस्थल में भी जिसकी बुद्धि ठिकाने रह सकती है और जो इस पञ्चाशिका के समान उत्तम कविता कर सकता है उसके महाकवि और महासाहसवान् होने में कोई सन्देह नहीं।

विक्रमाङ्कदेव का संक्षिप्त चरित।

इस काव्य के अठारहवें सर्ग में बिल्हण ने अपना वृत्तान्त लिखा है, और पहले से लेकर सत्रहवें सर्ग तक विक्रमाङ्कदेव और उसके पूर्वजों के चरित की चर्चा की है। विक्रमाङ्क के चरित को जैसा चाहिए वैसा बिल्हण ने नहीं लिखा; बीच बीच में अनेक बातें छोड़ दी हैं। राजाओं के यहाँ इतिहास में लिखी जाने योग्य प्रतिदिन अनेक बातें हुआ करती हैं, परन्तु बिल्हण ने विक्रमाङ्क के वंश का वर्णन करके और थोड़ा सा वृत्तान्त उसके पिता आहवमल्ल का लिख, इस काव्य के नायक विक्रमाङ्क

जन्म उसकी राज्य-प्राप्ति, उसके युद्ध इत्यादि मुख्य ही मुख्य बातों का उल्लेख किया है; शेष काव्य को ऋतुओं के वर्णन, प्रातःकाल, सन्ध्या, चन्द्रोदय आदि के वर्णन और त्रिक्रमाङ्कदेव की रानी के नख-सिख के वर्णन से पल्लवित करते करते उसे समाप्त कर दिया है। तथापि जिन मुख्य मुख्य बातों का उल्लेख बिल्हण ने किया है वे प्रायः सब सर डबल्यू इलियट के प्रकाशित किये हुए उन शिलालेखों और दानपत्रों से मिलती हैं जो कल्याण के प्राचीन चालुक्यवंशीय राजाओं के समय के अब तक पाये गये हैं। अब, हम, विक्रमाङ्क और उसके वंश का वृत्तान्त, जैसा और जिस क्रम से बिल्हण ने वर्णन किया है, वैसा ही और उसी क्रम से थोड़े में लिखते हैं।

बिल्हण का कथन है कि एक बार ब्रह्मा जिस समय समाधिस्थ थे उस समय इन्द्र उनके पास गये, और जाकर उनसे यह विनती की कि पृथ्वी पर अधर्म की वृद्धि हो रही है; अतएव आप एक ऐसा पुरुष उत्पन्न कीजिए जिससे भयभीत होकर दुराचारी अपने अपने दुराचार को छोड़ दें। यह सुनकर ब्रह्मा ने अपने कमण्डलु की ओर देखा और

उनके देखते ही त्रिलोकी की रक्षा करने योग्य उससे एक वीर पैदा हुआ। उसी पुरुष से चालुक्यों का वंश चला। चालुक्यों का पहला पुरुष हारीत हुआ। इस वंश के राजा लोग पहले अयोध्या में, उसे अपनी राजधानी बनाकर, रहते थे*। उनमें से कई राजा, जिनकी विजय लालसा बड़ी प्रबल थी, विजय करते हुए दूर तक दक्षिण में चले गये। इसी वंश का भूषण तैलप † नाम का एक महा प्रतापी राजा हुआ। वह महावीर था। उसने पृथ्वी के कण्टकरूप राष्ट्रकूट के राजवर्ग को जड़ से उखाड़ डाला।

---

*शिलालेखों से विदित होता है कि अयोध्या और दूसरे नगरों में इस वंश के ५९ राजाओं ने राज्य किया।

† तैलप ने ९७३ से ९९७ तक राज्य किया। एशियाटिक सोसायटी के जरनल में लिखा है कि इस राजा ने मालवा पर चढ़ाई की थी। यह बात भोजचरित में भी लिखी है और शिलालेखों में भी।

शिलालेखों के अनुसार तैलप ने मालवा के राजा मुञ्ज को पकड़ कर मार डाला; परन्तु मुञ्ज के अनन्तर वहाँ के राजा भोज ने उसका बदला तैलप से लिया, अर्थात् उसे उसने युद्ध में मारा। बिल्हण ने तैलप का मालवा पर चढ़ाई करना नहीं लिखा और न उसके मारेजाने की सूचना ही दी। बिल्हण में यह बड़ा दोष है कि अपने चरितनायक के वे गुण ही गुण वर्णन करते हैं और चालुक्य-वंश के प्रतिपक्षियों के चरित का कोयले से भी काला रँगने में वे कसर नहीं करते।

तैलप के अनन्तर सत्याश्रय* को चालुक्य-वंश की राजगद्दी मिली। वह परशुराम के समान धनुर्विद्या में कुशल था। उसके अनन्तर जयसिंह † वहाँ का राजा हुआ। उसने बहुत दिन तक राज्य किया। उसके कण्ठ में इन्द्र ने अपने हाथ से पारिजात की माला पहनाई।

१०४० से १०६९ ई० तक चालुक्यों की राज्य-लक्ष्मी जयसिंह के पुत्र आहवमल्ल की वशीभूत रही। इसका दूसरा नाम त्रैलोक्यमल्ल भी लिखा है। उसने चोलों को जीता और मालवा की राजधानी धारा पर भी चढ़ाई की। धारा में उस समय, राजा भोज राज्य करता था। भोज को धारा से भागना पड़ा। दाहल के राजा कर्ण का भी अधिकार आहवमल्ल ने छीन लिया। कांची के

---

* सत्याश्रय का राज्य-काल ९९७ से १००८ ई० तक है।

† इस राजा ने १०१८ से १०४० ई० तक राज्य किया। इन्द्र के हाथ से माला पहनाये जाने से बिल्हण का कदाचित् यह अभिप्राय है कि जयसिंह ने युद्ध में प्राण छोड़े; अतएव, किसी अप्सरा ने, सुरलोक में, उसे अपना पति बनाया और नन्दनवन के फूलों की माला पहनाई। १००८ और १०१८ के बीच जयसिंह के बड़े भाई ने राज्य किया; परन्तु उसका नाम बिल्हण ने छोड़ दिया है।

राजा को परास्त करके उसे उसने निकाल दिया और अपनी राजधानी कल्याण को नये नये प्रासादों और मन्दिरों से शोभित किया।

आहवमल्ल यद्यपि वैभव के शिखर पर आरूढ़ था, तथापि उसे इस बात की बड़ी चिन्ता थी, कि उसके कोई पुत्र नहीं। इसलिए उसने अपनी रानी के साथ एक शिवालय में तपस्या आरम्भ की। शङ्कर उसकी आराधना से प्रसन्न हुए और उन्होंने यह वर उसे दिया कि, एक नहीं किन्तु तीन पुत्र उसके होंगे। उन्होंने कहा कि "दो पुत्र तो तुझे तेरी तपस्या के प्रभाव और सदाचरणों के बल से होंगे और एक मेरी कृपा * से होगा"। यह सुनकर आहवमल्ल ने प्रसन्नतापूर्वक वहाँ से प्रस्थान किया और अपना राज्य-कार्य्य करने लगा।

---

* जान पड़ता है, अपने चरितनायक विक्रमाङ्क को देवताओं की कृपा-विशेष का पात्र प्रकट करने ही के लिए बिल्हण ने इस प्रकार की आकाशवाणी की योजना की है। विक्रम ने अपने बड़े भाई सोमदेव को निकाल कर कल्याण की राजगद्दी उससे छीन ली। अत: बिल्हण यदि विक्रम को देवताओं के प्रसाद से उत्पन्न हुआ न बतलाते तो शायद विक्रम का ऐसा अनुचित व्यापार वाचकों की दृष्टि में बहुत मन्द दिखलाई देता।

यथा समय आहवमल्ल की रानी के पहला पुत्र हुआ। उसका नाम सोमेश्वर रक्खा गया। जब दूसरी बार रानी गर्भवती हुई तब उसे विचित्र प्रकार के दोहद पूर्ण करने की इच्छा होने लगी। कभी उसने दिग्गजों की पीठ पर अपना पैर रखना चाहा; कभी अप्सराओं से अपने पैर मलाने चाहे; और कभी खड्गों को, उसने इस प्रकार, देखा मानों उनकी धारा के जल को वह पी लेना चाहती थी। अस्तु। बड़े शुभ मुहूर्त में आहवमल्ल के दूसरा पुत्र उत्पन्न हुआ। उस समय आकाश से फूलों की वर्षा होने लगी; इन्द्र की दुन्दुभी बजने लगी; और सब ओर आनन्द-प्रदर्शक गान सुनाई देने लगे। इस बालक का नाम विक्रमादित्य रक्खा गया। वह अपने पिता का अतिशय प्यारा हुआ। खेल में भी वह अद्भुत वीरता के लक्षण दिखलाने लगा। कभी वह हंसों की मृगया करता; और कभी पिँजरों में पड़े हुए सिंह के बच्चों को सताता। कुछ दिन में वह पढ़ने लिखने में भी कुशल हो गया और धनुर्विद्या में भी। विक्रम के अनन्तर आहवमल्ल के तीसरा पुत्र हुआ। उसका नाम जयसिंह रक्खा गया।

जब आहवमल्ल ने देखा कि विक्रमादित्य धनुर्विद्या में कुशल और युद्धक्षेत्र में जाने के लिए उत्सुक है तब उसने उसे अपना युवराज बनाना चाहा। परन्तु विक्रम ने इस बात को स्वीकार न किया। उसने कहा कि युवराज का पद उसके अग्रज सोमदेव को मिलना चाहिए। आहवमल्ल ने बहुत समझाया कि शङ्कर ने आकाश-वाणी द्वारा उसे ही प्रजापालन के योग्य होने की सूचना दी है; तथापि विक्रम आदरपूर्वक, परन्तु दृढ़ता के साथ, उस पद को अस्वीकार ही करता गया। विवश होकर आहवमल्ल ने सोमेश्वर को, युवराज नियत करके, अपने अनन्तर अपने राज्य का अधिकारी बनाया। राज्यलक्ष्मी और पिता का पवित्र प्रेम, तथापि, विक्रम ही की ओर रहे। राजा और युवराज के काम भी वही करता रहा। सोमेश्वर नाममात्र को युवराज था *।

अपने पिता आहवमल्ल की आज्ञा से, कुछ काल के अनन्तर, विक्रम युद्धयात्रा के लिए

---

*बिल्हण ने यहां पर भी विक्रम का पक्ष लिया जान पड़ता है। अपने बड़े भाई की ओर उसकी उदारता इत्यादि का वर्णन करके उसने विक्रम ही को राज्य पाने के योग्य होने का इशारा किया है।

निकला। उसने चोल देश के राजा को परास्त किया और उसकी राजधानी काञ्ची को लूट लिया। मालवा के राजा ने, अपने खोए हुए राज्य को फिर प्राप्त करने के अभिप्राय से, उससे सहायता माँगी। विक्रम ने उसकी सहायता की। गौड़ और कामरूप* तक विजय करता हुआ वह चला गया। सिंहल के राजा को उसने उसके देश से निकाल दिया; मलयाचल के चन्दनवन को उसने उजाड़ डाला; और केरलदेश के नरेश को इस लोक से प्रस्थान कराया। गाङ्गकुण्ड, चक्रकोट और वेङ्गि † को भी उसने जीत लिया।

---

* विक्रम के द्वारा गौड और कामरूप का विजय किया जाना असम्भव सा जान पड़ता है। सम्भव है इन देशों के राजाओं के राज्य के किसी भाग में वह अपनी सेनासहित प्रविष्ट हो गया हो और वहाँ लूट मार करके लौट आया हो।

† वेङ्गि उस प्रदेश का नाम है जो गोदावरी और कृष्णा के बीच समुद्र के किनारे किनारे चला गया है। उस समय वहाँ चोलों का राज्य था। परन्तु यह नहीं पता लगता कि गाङ्गकुण्ड और चक्रकोट कहाँ थे और अब वे किस नाम से प्रसिद्ध हैं।

इस प्रकार विजयी होकर विक्रम कल्याण की ओर लौटा और कृष्णा के तट तक आया। वहाँ उसे अपशकुन होने लगे। इसलिए वह वहीं ठहर गया और शान्ति के निमित्त पुण्यकर्म करने लगा। जिस समय वह वहाँ इस प्रकार शान्ति-क्रियाओं में लगा था उसी समय कल्याण से एक दूत उसके पास पहुँचा। उसे देखते ही विक्रम को ऐसा अनुमान हो गया कि वह कोई अमङ्गल-संवाद लाया है। विक्रम ने पहले ही अपने पिता आहवमल्ल के कुशल समाचार पूछे। इस प्रश्न को सुनकर उस दूत ने बड़ा शोक प्रकाशित किया और आँखों से आँसू बहाते हुए क्रम क्रम से आहवमल्ल के मृत्यु की उसने सूचना दी। उसने कहा कि चोल, पांड्य और सिंहल इत्यादि देशों का आप के द्वारा जीता जाना सुनकर महाराज को महा आनन्द हुआ। आपके विजय के उपलक्ष्य में जब वे अनेक प्रकार के सुखोपभोग और आनन्द में निमग्न थे तभी उनको ज्वर ने आ घेरा। जब महाराज को विदित हो गया कि औषधोपचार से अब कोई लाभ न होगा तब उन्होंने दक्षिण की गङ्गा-स्वरूपिणी तुङ्गभद्रा में

अपना शरीर-पात करना निश्चित किया। अपने राजमन्त्रियों की सलाह से उन्होंने उस पवित्र नदी की ओर प्रस्थान किया; और वहाँ पहुँच कर उसकी तरङ्गमालाओं में 'शिव शिव' कहते हुए अपने प्राण विसर्जन किये।

पिता की मृत्यु का संवाद सुनकर विक्रमादित्य को अत्यन्त शोक हुआ। शोक और खेद से विह्वल होकर वह आत्महत्या तक करने के लिए उतारू हो गया। इस कारण उससे शस्त्र छीन लेने पड़े। कुछ समय के अनन्तर उसका शोक कम हुआ और कृष्णा के तट पर उसने अपने पिता की अन्त्यक्रिया की।

पिता की अंत्येष्टि क्रिया को समाप्त करने पर, विक्रमादित्य ने, अपने बड़े भाई सोमेश्वर को धैर्य देने के लिए, कल्याण की ओर प्रस्थान किया। सोमेश्वर मिलने के लिए नगर से बाहर आया और बड़े प्रेम से विक्रम से मिला। कुछ काल तक दोनों भाई बिना किसी वैमनस्य के प्रीतिपूर्वक रहते रहे। यद्यपि सोमेश्वर से विक्रम सब बातों में श्रेष्ठ था, तथापि उसने अपने बड़े भाई का वैसाही मान रक्खा जैसा कि राजा का रखना

चाहिए। जो कुछ धन और सम्पत्ति लड़ाइयों में लूट लाया था वह भी उसने सोमेश्वर को दे दी* । कुछ काल के अनन्तर सोमेश्वर अनेक प्रकार के दुराचरणों में लिप्त हो गया । अभिमान ने उसको अन्यायी बना दिया । लोभ ने उसे घेर लिया । सबके ऊपर उसे सन्देह होने लगा । प्रजा पर वह निर्दयता करने लगा। इन कारणों से अच्छे अच्छे अधिकारी पुरुषों ने उसे छोड़ दिया। अतएव चालुक्यवंश की राजलक्ष्मी मलिन हो गई उसने अपने छोटे भाई विक्रम के साथ भी अन्याय करना आरम्भ किया । जब विक्रम ने कल्याण में रहना अनुचित समझा तब अपने छोटे भाई जयसिंह को साथ लेकर अपने अनुगामियों सहित वह चल दिया। जब सोमेश्वर ने सुना कि विक्रमादित्य कल्याण से भग गया तब उसने उस के पीछे अपनी सेना भेजी। विक्रम की यह इच्छा न थी कि अपने भाई से युद्ध करे, परन्तु विवश

---

* यहाँ पर, फिर भी बिल्हण ने विक्रमादित्य की उदारता और योग्यता का इसलिए उल्लेख किया जान पड़ता है जिसमें यह भासित हो कि पीछे से होने वाले वैमनस्य का कारण सोमेश्वर ही था, विक्रम नहीं।

किये जाने पर उसे युद्ध के लिए सज्जित होना ही पड़ा। भाई की सेना को उसने क्षण भर में नष्ट कर दिया। सोमेश्वर ने कई बार विक्रम के मारने के लिए सेना भेजी, परन्तु विक्रम ने प्रतिबार उसे काट डाला। जब सोमेश्वर की कुछ न चली और उसकी असंख्य सेना मारी गई तब वह चुप हो बैठा।

इस प्रकार कई बार सोमेश्वर की सेना को परास्त करके विक्रम तुङ्गभद्रा की ओर चला और उसके किनारे पहुँच कर वहाँ अपनी सेना उसने निवेशित की। वहाँ से उसने चोल देश पर चढ़ाई करना चाहा; परन्तु कुछ काल वनवास* प्रान्त में व्यतीत किया।

जब उसने युद्धयात्रा के लिए प्रस्थान किया तब उसकी सेना के तूर्यनाद ने मलयदेश के राजाओं को उसकी पहली वीरता के कार्यों का

---

* वनवास उस प्रान्त का नाम है जो घाट पर्वतों के पास तुङ्गभद्रा और वरदा नदियों के बीच में है। जान पड़ता है, उस समय, वनवास चालुक्यों ही के राज्य के अन्तर्गत था। एशियाटिक सोसाइटी के जरनल के चतुर्थ भाग से विदित होता है कि, चालुक्यों की अधीनता में कादम्ब-वंश के राजा वनवास प्रान्त में राज्य करते थे।

स्मरण दिलाया। कोंकन का राजा जयकेशी* उससे आकर मिला और अनेक प्रकार के उपायों से उसने उसकी सम्भावना की। † आलुपदेश के राजा ने भी विक्रम की अधीनता स्वीकार की। केरल के राजा की स्त्रियाँ विक्रम के पहले कृत्यों का स्मरण करके भयभीत हो उठीं।

चोलदेश के राजा ने जब यह जाना कि वह विक्रम का सामना नहीं कर सकता तब उसने अपना दूत भेजकर विक्रम से स्नेह सम्पादन करना चाहा। इस बात को विक्रम ने स्वीकार किया। चोल-नरेश ने इस परस्पर की मैत्री को, अपनी कन्या का विक्रम के साथ विवाह करके, और भी दृढ़ करने की अभिलाषा प्रकट की। विक्रम ने इस बात को भी प्रसन्नतापूर्वक स्वीकार किया और वह

---

* फ्लीट साहब के प्रकाशित किए हुए शिलालेखों में लिखा है कि कादम्ब-वंश का यह द्वितीय जयकेशी नामक राजा था। उसकी राजधानी गोपकपुर अर्थात् गोवा थी। जयकेशी और विक्रमादित्य की मित्रता का उल्लेख भी इन शिलालेखों में है।

† यह ठीक ठीक नहीं जाना गया कि आलुप नामक नगर कहाँ विद्यमान था। फ्लीट साहब का अनुमान है कि समुद्र के तट पर गोवा के पास ही वह कहीं रहा होगा।

वहाँ से तुङ्गभद्रा की ओर फिर लौट गया। वहाँ चोल-नरेश भी आकर उससे मिला और वहीं उसने विक्रम को अपनी कन्या समर्पण की। कन्यादान के अनन्तर चोलनरेश अपने देश को लौट गया। कुछ काल पीछे विक्रम ने अपने ससुर की मृत्यु का समाचार सुना। इस बात की भी तत्काल ही उसे सूचना मिली कि, चोलमहीप के मरने से राज्य में विप्लव मच गया है। इसलिए उसने अपने साले को गद्दी पर बिठाने के लिए दक्षिण की ओर फिर प्रस्थान किया। कांची पहुँच कर उसने विरोधियों को मार भगाया और अपने साले को सिंहासन पर बिठा दिया। उसके अनन्तर वह गांगकुण्ड पहुँचा और वहाँ शत्रु की सेना को नष्ट करके चोलदेश के नवीन नरेश को उसने शत्रु-रहित कर दिया। वहाँ से लौट कर कुछ दिन कांची में वह फिर रहा और उसके अनन्तर पुनर्वार तुङ्गभद्रा की ओर गया। उसे उस ओर गये थोड़े ही दिन हुए थे कि उसने अपने साले की मृत्यु का अमङ्गल समाचार सुना और साथ ही यह भी सुना कि वेङ्गि देश के राजा राजिग ने कांची को अपने अधिकार में कर लिया है।

राजिग को दण्ड देने के लिए विक्रम ने अपनी सेना सज्जित की और शीघ्र ही कांची की ओर प्रस्थान कर दिया। परन्तु राजिग ने विक्रम के बड़े भाई सोमेश्वर के पास दूत भेजकर उसे अपना मित्र बना लिया और दोनों ने मिल कर विक्रम को परास्त करने का विचार किया। यद्यपि चोल और चालुक्यों की सर्वदा से शत्रुता चली आती थी, तथापि भाई से बदला लेने का अच्छा अवसर हाथ आया जान सोमेश्वर इस चिर-शत्रुता को भूल गया। विक्रम ने राजिग पर चढ़ाई की और थोड़े दिनों में वह अपने शत्रु की सेना के सम्मुख पहुँच गया। इधर सोमेश्वर ने कल्याण से प्रयाण किया और विक्रम के पीछे पीछे अपनी सेना दौड़ा कर उसका निकटवर्ती हुआ। जब विक्रम को अपने भाई की कृति का समाचार मिला तब उसने उसके साथ युद्ध करने से अनिच्छा प्रकट की और सोमेश्वर को उसके अनुचित अनुष्ठान से विरत होने के लिए बहुत समझाया। सोमेश्वर ने ऊपरी मन से विक्रम को लिख भेजा कि वह उसके साथ युद्ध नहीं करना चाहता; परन्तु मन में वह उसे धोखा देकर मार

डालने का यत्न करता रहा। विक्रम को उसकी चाल विदित हो गई; परन्तु फिर भी अपने बड़े भाई के सम्मुख रण में शस्त्र उठाने से उसने आनाकानी की। अतएव शिव* ने स्वप्न में विक्रम को आज्ञा दी कि वह लड़े और अपने शत्रुओं को परास्त करके दक्षिण में सबसे बड़ा राजा होवे। यदि ऐसा स्वप्न उसे न होता तो वह कदापि अपने बड़े भाई से न लड़ता। अस्तु। दूसरे दिन महा घोर संग्राम हुआ; उसमें विक्रम की जीत हुई।

* एशियाटिक सोसायटी के जरनल के चतुर्थ भाग में लिखा है कि यह युद्ध १०७६ ईसवी में हुआ। परन्तु राजिग का नाम वहाँ नहीं लिखा; केवल सोमेश्वर और विक्रम के युद्ध का वर्णन है। बिल्हण के अनुसार विक्रम को राज्य की अभिलाषा न थी; वह उसे उसके भाग्य से आपही आप मिला; यों कहना चाहिए कि शिवजी ने बलात् उसे दिलाया। परन्तु सामान्य वाचकों के मन में इन बातों को सुन कर शंका आये बिना नहीं रह सकती। राज्य के लिए भाई भाई में अनेक युद्ध हुए हैं और अब भी अनेक झगड़े हुआ करते हैं। कोकन और आलुप इत्यादि के राजाओं से मेल करके विक्रम यदि पहले ही से अपने भाई के साथ युद्ध के लिए प्रस्तुत रहा हो तो क्या आश्चर्य है? राज्य-लक्ष्मी के लिए कौन लोलुप नहीं होता? यदि, विक्रम संसार के साधारण नियमों में अपवादरूप रहा हो तो हो सकता है।

राजिग भाग गया; श्रौर सोमेश्वर पकड़ लिया गया। युद्ध समाप्त होने पर विक्रम तुङ्गभद्रा की श्रोर फिर लौट आया। उसने चाहा कि वह सोमेश्वर को छोड़ दे श्रौर छोड़कर राज्य भी उसे ही दे दे; परन्तु शिव ने क्रोधपूर्वक फिर उसे आज्ञा दी कि वह तुरन्त ही राज्य का सूत्र अपने हाथ में लेवे। अतएव, विवश होकर, शिवजी की आज्ञा विक्रम को माननी पड़ी। उसने अपने को दक्षिण का राजा प्रसिद्ध किया श्रौर अपने छोटे भाई जयसिंह को वनवास देश का अधिकारी नियत किया*।

तदनन्तर विक्रम ने श्रौर अनेक चढ़ाइयाँ कीं श्रौर दिग्गजों को छोड़ कर सब कहीं सब कुछ अपने अधीन कर लिया। कवि ने यह नहीं लिखा कि किसके ऊपर ये चढ़ाइयाँ हुईं। परन्तु जब कोई राजा जीतने को न रहा–सारा 'नरनाथचक्र†' जीत लिया गया–तब विक्रम ने चोल को निर्मूल करने के लिए एक बार श्रौर उस पर धावा किया। यह करके उसने अपनी राजधानी कल्याण में प्रवेश किया।

* बिल्हण ने यह कहीं नहीं लिखा कि सोमेश्वर का क्या हुआ।

† 'नरनाथचक्र' से शायद सामान्य सामन्तों से अभिप्राय है।

कल्याण में विक्रम का आगमन वसन्त में हुआ। जब ऋतुराज अपने आगमन से मनुष्यों के चित्त को चंचल कर रहा था तभी करहाट (अर्वाचीन कराड़) के राजा की कन्या चन्द्रलेखा अथवा चंदल देवी की अश्रुतपूर्व सुन्दरता का वर्णन विक्रम के कान तक पहुँचा। उसने सुना कि पार्वती की आज्ञा से वह राजकन्या स्वयंवर करना चाहती है। नख से लेकर शिखा पर्य्यन्त उस कन्या का वर्णन सुनकर विक्रम का चित्त उस पर लुब्ध हो गया। अतएव इस बात के जानने के लिए उसने करहाट को एक दूत, उसी क्षण, भेजा कि चन्द्रलेखा उसे मिल सकती है या नहीं। उस दूत के लौटने तक विक्रम को असह्य विरह-वेदनायें हुईं। उसके अङ्ग-प्रत्यङ्ग दुबले होगये; उसका मुख पीला पड़ गया; और किसी काम में उसका मन न लगने लगा। यह दशा बहुत दिन तक उसे न भोगने पड़ी। वह दूत शीघ्र ही लौट आया और समाचार भी यथेष्ट लाया। उसने कहा कि आपके सद्गुणों पर मोहित होकर चन्द्रलेखा ने आप ही को जयमाल पहनाना

निश्चय किया है। उसके पिता ने भी यह बात स्वीकार करली है।

स्वयंवर शीघ्र ही होने वाला था; अतएव विक्रम ने करहाट के लिए शीघ्र ही प्रस्थान किया। वहाँ पहुँचने पर, यथोचित आदर-सत्कार के अनन्तर, करहाट-नरेश ने उसे स्वयंवर के मण्डप में प्रवेश कराया। वहाँ विक्रम ने देखा कि अनेक देशों के राजा महामनोमोहक वेष बनाये हुए अपने अपने स्थान पर आ बैठे हैं। विक्रम के आसन ग्रहण करने पर चन्द्रलेखा भी प्रतीहारी के साथ मंडप में आई। प्रतीहारी बड़ी चतुर और बहुश्रुत थी। आये हुए राजाओं के चरित से वह भली भाँति परिचित थी। उसने प्रत्येक राजा का वर्णन बड़ी योग्यता से किया। अयोध्या, चेदी, कानकुब्ज, चर्मणवती, कालिंजर, गोपाचल, मालव, गुर्जर, पांड्य और चोल आदि देशों के नरेशों की प्रशंसा में प्रतीहारी ने क्रम क्रम से बहुत कुछ कहा; परन्तु उनमें से एक भी चन्द्रलेखा के मन न आया। अनेक प्रकार की भाव-भङ्गियों से एक एक राजा को अपने मनोनुकूल न होने की सूचना देती हुई चन्द्रलेखा आगे बढ़ती गई। जब वह विक्रम के

सम्मुख आई तब उसने उसके कंठ में माला डाल दी। दर्शकों ने उसके इस कृत्य की आल्हाद-सूचक वाक्यों से अनुमोदना की। तदनन्तर चन्द्रलेखा और विक्रम ने शीघ्र ही अन्तःपुर में प्रवेश किया।

स्वयंवर समाप्त हो जाने पर निराश हुए दूसरे राजाओं ने वहाँ से प्रस्थान किया। उनमें से कई राजाओं ने कोप-व्यञ्जक काम किये होते; परन्तु चालूक्य-नरेश के भय से वे चुप चाप वहाँ से चले गये। विक्रम और चन्द्रलेखा करहाट ही में कुछ काल तक रहे। उस समय वसन्त* तो था ही; प्रातःकाल वे दोनों पुष्पवाटिका में घूमने जाया

---

* बिल्हण ने सातवें सर्ग में दोला और वसन्त का वर्णन; आठवें में चन्द्रलेखा के स्वरूप का वर्णन: दसवें में वनविहार, पुष्पावचय, और जल विहार वर्णन: ग्यारहवें में संध्या, चन्द्रोदय, इत्यादि का वर्णन करके ग्रन्थ को बहुत बढ़ा दिया है। विक्रम के चरित से और इन बातों से बहुत कम सम्बन्ध था; परन्तु अलंकार-शास्त्र के अनुसार चरित को काव्य के लक्षणों से लक्षित करने ही के लिए बिल्हण को इतना परिश्रम करना पड़ा।

करते थे। चन्द्रलेखा से बसन्त का वर्णन करके विक्रम उसे प्रसन्न करता था; और झूले पर बिठाकर उसे स्वयं झुलाता था। दस पाँच दिन बीत जाने पर एक बार करहाट का सारा रनिवास पुष्पवाटिका को गया और वहाँ राजा के साथ अनेक प्रकार की विनोदात्मक बातें करते हुए उन्होंने फूल बीने। उसके अनन्तर सबने जल-बिहार किया और सायङ्काल चन्द्रमा की आह्लादकारिणी चाँदनी का सुख लेकर सबने शृंगार भी किया। यह सब हो जाने पर राजा ने स्त्रियों समेत मधुपान किया। स्त्रियाँ शीघ्र ही मधु के वश हो गईं और उनकी अङ्ग-भङ्गी और बातों से राजा का बहुत कुछ मनोरञ्जन हुआ।

ग्रीष्म के आरम्भ में चन्द्रलेखा को लेकर विक्रम कल्याण लौट आया। उसका पुर में प्रवेश करना सुन स्त्रियाँ उसे देखने को दौड़ीं और नाना प्रकार की चेष्टाओं से उस पर उन्होंने अपना प्रेम प्रकट किया। अपने महलों में पहुँच कर विक्रम ने एक बहुत बड़ा दरबार किया और दरबार के अनन्तर वह अन्तःपुर में सुख से रहने लगा। चन्दन आदिक शीतल पदार्थों से अपने शरीर को लिप्त करके,

ग्रीष्म की गर्मी से बचने के लिए, रानियों के साथ स्नानागर और भूगर्भगृह इत्यादिकों में उसने निवास किया और किसी तरह अपने को ग्रीष्म की ऊष्मा से बचाया। कुछ काल के अनन्तर उसने वापिकाओं में जल-क्रीड़ा भी की। वर्षा ऋतु आने पर भी वह अपनी राजधानी ही में रहा और नाना प्रकार के सुखोपभोग में अपना समय बिताया। चन्द्रलेखा को सम्बोधन करके वर्षा का बहुत ही अच्छा वर्णन उसने अपने मुख से किया। यह वर्णन बिल्हण ने विक्रमाङ्कदेव के मुख से केवल इसी लिए कराया है जिसमें सब ऋतुओं का वर्णन उसके काव्य में आजाय।

वर्षा के अन्त में विक्रम को यह समाचार मिला कि उसका छोटा भाई जयसिंह, जिसे उसने वनवास का अधिकारी बनाया था, उसके प्रतिकूल शस्त्र उठाना चाहता है। उसने यह भी सुना कि जयसिंह ने प्रजा को पीड़ित करके बहुत सा धन एकत्र कर लिया है; अपनी सेना भी बढ़ाई है; द्रविड़देश के राजा से मित्रता करने का भी वह यत्न कर रहा है; और सब से बुरी बात यह कि कल्याण-नरेश के योद्धाओं को भी वह अपने वशी-

भूत करना चाहता है। इस संवाद को सुनकर विक्रम को बड़ा असमंजस हुआ; परन्तु जयसिंह की प्रतिकूलता का पूरा प्रमाण पाये बिना उसके प्रतीकार के लिए उद्यत होना उसने अनुचित समझा। अतएव उसने सत्यता का निर्णय करने के लिए कई दूत भेजे, जिन्होंने आकर उसके सुने हुए संवाद को सत्य बतलाया। इस पर भी विक्रम ने अपने भाई के प्रतिकूल शस्त्र नहीं उठाना चाहा; उसने जयसिंह को कहला भेजा कि प्रतिकूलता करने से उसे कोई लाभ न होगा। परन्तु उसके कहने सुनने का जयसिंह पर कुछ भी प्रभाव न पड़ा।

इसी अवसर में शरद् ऋतु का आगमन हुआ। बिल्हण ने इस ऋतु की शोभा का भी लम्बा चौड़ा वर्णन किया है।

यद्यपि इस ऋतु में अनेक बातें सुखकर होती हैं, परन्तु जयसिंह की ओर से खटका होने के कारण विक्रम को उसका आगमन सुखदायक नहीं हुआ। विक्रम ने बहुत चाहा कि जयसिंह उससे मेल कर ले; परन्तु उसने एक न सुनी। जयसिंह ने अनेक माण्डलिक राजाओं के साथ शीघ्र ही सेना समेत

कृष्णा की ओर प्रस्थान किया। गर्व में आकर मार्ग में, जयसिंह के योद्धा और सामन्तों ने अनेक प्रजा-पीड़क काम किये। नगर लूट लिये गये; कोई कोई जला भी दिये गये। नगर-निवासी कारागारों में डाल दिये गये।। विक्रम ने तङ्ग आकर, अन्त में, शस्त्रग्रहण किये और सेना सजा कर वह भी कृष्णा नदी की ओर चला। वहाँ एक बार उसने अपने भाई के पास साम-दाम-सूचक एक पत्र और भेजा, परन्तु उससे भी कोई लाभ न हुआ। अन्त में युद्ध हुआ। युद्ध में पहले यह भासित होने लगा कि हाथियों की अधिकता के कारण, जयसिंह ही के हाथ खेत रहेगा; परन्तु विक्रमाङ्कदेव की वीरता और रण-कुशलता के सामने विपक्षियों की कुछ न चली। जयसिंह की सेना भाग निकली और वह पकड़ लिया गया*। परन्तु विक्रम ने

*विक्रम और जयसिंह के युद्ध का कोई पता इलियट साहब के प्रकाशित किये गये शिलालेखों में नहीं मिलता। जान पड़ता है, जान बूझ कर विक्रम ने इस बात का किसी शिलालेख में उल्लेख नहीं होने दिया कि कोई यह न जाने कि उसने अपने दोनों भाइयों से युद्ध किया। यह युद्ध १०७७ ईसवी में हुआ।

अपने भाई के साथ, तिसपर भी, कोई बुरा व्यवहार नहीं किया। उसके साथ विक्रम ने दयालुता ही का बर्ताव किया।

विक्रम जब कल्याण को लौटा तब शिशिर ऋतु थी। इस ऋतु के अनुकूल सुखोपभोग करके उसने मृगया के लिए प्रस्थान किया और अनेक सिंह, शूकर, हरिण इत्यादि अपने तीक्ष्ण बाणों से मार गिराये। यह मृगयावर्णन भी, काव्य का एक अङ्ग समझ कर ही, शायद, बिल्हण ने विक्रमाङ्क-देवचरित में रक्खा है।

जब विक्रम ने अपने सब शत्रुओं को परास्त करके उनके देशों को अपने अधिकार में कर लिया तब उसके राज्य में सब कहीं शान्ति ही शान्ति दिखलाई देने लगी। प्रजा को किसी प्रकार का दुःख न रहा। दुर्भिक्ष और अकालमृत्यु का भय जाता रहा। मेघ यथासमय बरसने लगे। दान में वह कर्ण से भी बढ़ गया। प्रजा को वह पुत्रवत् समझने लगा। नेत्रों को सुख देने वाले उसके पुत्र भी हुए। अपना नाम चिरस्मरणीय करने के लिए उसने अनेक धर्म्मशालायें और देवस्थान भी बनवाये। कमलाविलासी नामक विष्णु का एक

अति मनोरम मन्दिर भी उसने निर्म्माण कराया; और उसके सामने ही एक उत्तम तड़ाग खुदवाया। उसी के पास उसने एक बहुत बड़ा नगर भी बसाया*।

विक्रम को एक बार फिर युद्ध-यात्रा करनी पड़ी। चोल-नरेश ने फिर सिर उठाया। विक्रम ने फिर काञ्ची पर चढ़ाई की और युद्ध में फिर चोल-महीप का पराजय हुआ। विक्रम ने काञ्ची को अपने अधीन कर लिया और वहाँ कुछ दिन रहकर वह अपनी राजधानी कल्याण को लौट आया†।

बिल्हण की कविता।

बिल्हण महाविद्वान् भी थे और महारसिक भी। सुनते हैं, जिस समय वे इस देश में पर्य्यटन कर रहे थे, उस समय किसी राजा के दरबार में

* इस नगर का नाम शिलालेखों में विक्रमपुर लिखा है। विक्रम का खुदाया हुआ तड़ाग और दूसरी टूटी फूटी इमारतें और मन्दिर इस नगर के पूर्वकालीन वैभव की अभी तक साक्ष्य दे रहे हैं।

† यहाँ पर बिल्हण का वर्णन किया हुआ विक्रमाङ्क का चरित समाप्त हुआ।

उन्हें प्रवेश पाने में कठिनाई हुई; द्वार ही पर वे रोक दिये गये। जब उन्होंने समझ लिया कि हम किसी प्रकार भीतर नहीं जाने पाते तब द्वार ही पर एक श्लोक लिख कर उन्होंने उसे राजा के पास भेजा। इस श्लोक का अन्तिम चरण यह है—

बिल्हणो वृषणायते !

इसकी व्याख्या करने की आवश्यकता नहीं; और न पूरा श्लोक देने ही की आवश्यकता; क्योंकि वह अश्लील होने के कारण जुगुप्सा-जनक है; परन्तु है बड़े मज़े का श्लोक।

बिल्हण के ग्रन्थों में से केवल दो ही ग्रन्थ उपलब्ध हैं—एक उनकी पञ्चाशिका और दूसरा विक्रमाङ्कदेवचरित। पञ्चाशिका का उल्लेख हम पहले कर चुके हैं। इसमें ५० श्लोक हैं और प्रति श्लोक के आरम्भ में "अद्यापि" है, इस "अद्यापि" से भी बिल्हण के विपत्तिग्रस्त होने की सूचना मिलती है। मरने के समय किसी को शृङ्गारिक भाव नहीं सूझते; परन्तु प्रेमातिशय के कारण बिल्हण को उस समय भी अपनी वल्लभा का स्मरण आया। किसी किसी श्लोक में तो उन्होंने "अन्ते स्मरामि" अर्थात् "अन्त समय में मैं उसे स्मरण

करता हूँ"—इस प्रकार स्पष्ट लिखा है। इस पञ्चाशिका का अन्तिम श्लोक बहुत ही मनोहर-भाव-पूर्ण है। अनुकूल समय आने पर पण्डित लोग बहुधा उसे कहते हैं। वह यह है—

अद्यापि नोज्झति हरः किल कालकूटं;
कूर्म्मो बिभर्त्ति धरणीं खलु पृष्ठभागे।
अम्भोनिधिर्वहति दुःसहवाडवाग्नि-
मङ्गीकृतं सुकृतिनः परिपालयन्ति ॥

अर्थात् कालकूट विष को पी कर अब तक उसे शङ्कर ने अपने कण्ठ में स्थान दे रखा है, फेंका नहीं; कूर्म्म ने अपनी पीठ पर पृथ्वी को एक वार जो रक्खा तो अब तक रक्खे ही हुए हैं; सागर भी अत्यन्त दुःसह वडवानल को पूर्ववत् धारण किये है; सच है—सत्पुरुष जिसे एक वार अपना लेते हैं उसको फिर कभी नहीं छोड़ते; उसका सर्वदा परिपालन ही करते हैं। सचमुच यह बहुत ही अच्छा पद्य है और बिल्हण की अद्भुत प्रतिभा का नमूना है।

बिल्हण ने इस पञ्चाशिका में अपनी प्राणाधिका के सम्बन्ध में अत्यन्त ही शृङ्गारिक श्लोक कहे हैं। उनमें कहीं उसके रूप का वर्णन है; कहीं उसकी

उक्तियों का; कहीं उसके हावभावों का; और कहीं तदनुकूल अपने मनोविकारों का। मरणोन्मुख मनुष्य के मुख से ऐसी सरस और सालङ्कार कविता का निकलना बड़े आश्चर्य्य की बात है।

बिल्हण के विक्रमाङ्कदेवचरित में १८ सर्ग हैं। यह एक जगह में हम ऊपर भी कह आये हैं। यहाँ पर हम प्रत्येक सर्ग में वर्णन किये गये विषयों की अनुक्रमणिका देते हैं—

विषय

१—मङ्गलाचरण; कवि और काव्यकी प्रशंसा; आहवमल्ल और उसके पूर्वजों का वर्णन।

२—चालुक्यों की राजधानी कल्याण का वर्णन; सन्तान के लिए आहवमल्ल की तपस्या; शङ्कर का वर-प्रदान; सोमदेव का जन्म।

३—विक्रमाङ्कदेव का जन्म; उसके बालचरित; जयसिंह का जन्म; सोमदेव को युवराज-पद की प्राप्ति।

४—विक्रमाङ्क-कृत दिग्विजय; आहवमल्ल की मृत्यु; सोमदेव का राजा होना; विक्रमाङ्क का कल्याण को लौटना; सोमदेव का अन्याय और अस-

चरित; अपने छोटे भाई जयसिंह के साथ विक्रमाङ्क का कल्याण-त्याग। सोमदेव की सेना का विक्रमाङ्क द्वारा पराजय।

५—विक्रमाङ्क का द्रविड़, केरल, चोल आदि देशों को जाना; उनसे कर लेना; द्रविड़-नरेश की कन्या के साथ तुङ्गभद्रा के तट पर उसका विवाह।

६—चोल-नरेश की मृत्यु; वेङ्गि के राजा राजिग की चोल देश पर चढ़ाई; युद्ध में चोल-नरेश के पुत्र की मृत्यु; सोमदेव और वेङ्गि-महीप की विक्रमाङ्क के प्रतिकूल सलाह; विक्रम का उन दोनों के साथ युद्ध; विक्रमाङ्क की जीत; सोमदेव का पकड़ा जाना; जयसिंह को वनवास-प्रदेश की प्राप्ति; विक्रम का कल्याण-गमन।

७—वसन्त-वर्णन; दोला-वर्णन इत्यादि।

८—करहाट-नरेश की कन्या चन्द्रलेखा की रूप-वर्णना।

९—चन्द्रलेखा की चिन्तना में विक्रम की वियोग-व्यथा; करहाट-नरेश के पास दूत भेजना; स्वयंवर में जाना; स्वयंवरा कन्या का वर्णन; आये हुए राजाओं की चेष्टा; प्रतीहारी द्वारा

राजाओं का चरित-कीर्तन ; चन्द्रलेखा का विक्रम को माला पहनाना।

१०–वन-विहार, जल-विहार, फूल बीनना इत्यादि।

११—सन्ध्या, चन्द्रोदय, चन्द्रोपालम्भ और प्रभात आदि का वर्णन।

१२—ग्रीष्म में विक्रम का करहाट से कल्याण को लौटना ; नगर-नारियों की चेष्टा ; ग्रीष्म-ऋतु के अनुकूल शीतोपचार ; वापिका-विहार इत्यादि।

१३—रानी चन्द्रलेखा को सम्बोधन करके विक्रम के मुख से वर्षा-वर्णन।

१४—जयसिंह की शत्रुता ; शरद् का आगमन और उसका वर्णन ; दूत द्वारा जयसिंह को विक्रम का सदुपदेश ; अपना राज तक दे डालने के लिए प्रस्तुत होना ; जयसिंह का न मानना ; दोनों ओर से चढ़ाई ; कृष्णा नदी के तट पर सेना-निवेश।

१५—जयसिंह और विक्रम का युद्ध ; जयसिंह का पराजय और पलायन ; उसका पकड़ा जाना।

१६—हेमन्त, शिशिर और मृगया आदि का वर्णन।

१७—विक्रम का दान-धर्म्म, प्रजापालन इत्यादि; तड़ाग, नगर और मन्दिर आदि का निर्म्माण ;

सन्तानोत्पत्ति ; चोल-नरेश के साथ अन्तिम संग्राम; विक्रम की जीत ; कुछ काल तक चोल की राजधानी काञ्ची में उसका रहना और तदनन्तर कल्याण-गमन ।

१८—काश्मीर-वर्णन, काश्मीर के राजा अनन्त, कलश और हर्ष आदि का वर्णन ; कवि के पूर्वजों का तथा स्वयं अपना चरित, देश-पर्य्यटन इत्यादि ।

इस विषयानुक्रमणिका से स्पष्ट है कि ऋतु आदि का वर्णन करके बिल्हण ने कथा को बहुत ही अधिक पल्लवित किया है । यदि काव्य के अङ्गों का वर्णन इसमें न किया जाता तो सातही आठ सर्गों में विक्रम का जितना चरित इसमें वर्णित है उतना आजाता । बिल्हण ने अपने काव्य को यद्यपि चरित नाम दिया है तथापि, इस समय की रुचि के अनुसार, उन्होंने तवारीख़ नहीं लिखी । बिल्हण को महाकाव्य लिखना था और उसके लिए किसी नायक का आधार आवश्यक था । अतएव जिसके वे आश्रित थे उसको ही चरित का नायक करके उन्होंने यह काव्य निर्माण किया । बिल्हण को ऋतु-वर्णन से बड़ी प्रीति जान पड़ती है ; एक भी ऋतु उन्होंने नहीं छोड़ी । चौदहवें सर्ग में कहीं तो

विक्रम जयसिंह की शत्रुता का विचार करके युद्ध रोकने का यत्न कर रहा था, कहाँ बीच में बिल्हण ने शरद् लाकर खड़ी कर दी और उसी का आप वर्णन करने लगे। ऐसे अवसर में इस प्रकार का वर्णन अनुचित जान पड़ता है।

जयसिंह के साथ जब विक्रम युद्ध करने गया तब अपने साथ अपना सारा अन्तःपुर भी लेगया था। प्राचीन समय में शायद राजा लोग अपने रनिवास समेत युद्ध-यात्रा को निकलते थे। शायद वे इसलिए ऐसा करते थे कि दैवात् यदि वे परास्त हो जायँ तो रनिवास को अपने साथ रख कर उसकी वे रक्षा कर सकें, क्योंकि राजधानी में छोड़ जाने से भय था कि स्त्रियाँ कहीं शत्रुओं के हाथ न पड़ें। मुसल्मान बादशाह भी अकसर ऐसा करते थे। विक्रम अपने साथ अपना रनिवासही नहीं लेगया, किन्तु वेश्यायें भी। मृगया-विहार के समय, बिल्हण ने लिखा है कि, वेश्यायें घोड़ों पर सवार होकर राजा के साथ मृगया में भी गई थीं। देखिए:—

वाराङ्गनास्तस्य तुरङ्गमेषु
    आकार्मुकाऽऽढकटाक्षबाणाः।
विरेजिरे दिग्विजयोद्यतस्य
    सेना इवानङ्गनराधिपस्य।

सर्ग १६, पद्य ३०।

दिग्विजय करने के लिए उद्यत हुए उस राजा की वाराङ्गनायें, भृकुटी रूपी धनुष पर कटाक्ष रूपी बानों को चढ़ाकर, अनङ्ग-नरेश की सेना के समान घोड़ों पर शोभायमान हुईं। जान पड़ता है कि, उस समय अन्तःपुर के साथ वारवनिताओं को भी बाहर ले जाना राजाओं के लिए कोई निन्दाजनक बात न मानी जाती थी।

इसमें संशय नहीं कि बिल्हण महाकवि थे। इस पर भी उन्होंने कालिदास के कथा-क्रम की, कालिदास के भावों की और कालिदास के वाक्य-विन्यास तक की, छाया ली है। वधस्थान में भी जो पचास पचास मनोहर पद्य कह सकता है उसके लिए ऐसा करना आश्चर्य्य की बात है। यह तो कहाहि नहीं जा सकता कि यदि बिल्हण कालि-दास के काव्य की छाया न ग्रहण करते तो उनका विक्रमाङ्कचरित नीरस अथवा अपाठ्य होता। फिर हम नहीं जानते, क्यों उन्होंने इस प्रकार का अनुचित काम किया। दूसरे के अर्थ को हरण करना उन्होंने स्वयं बुरा कहा है। आप कहते हैं:—

साहित्यपाथोनिधिमन्थनोत्थं
कर्णामृतं रक्षत हे कवीन्द्राः।

यदस्य दैत्या इव लुण्ठनाय
काव्यार्थचौराः प्रगुणीभवन्ति ॥
विक्र०, सर्ग १, पद्य ११ ।

हे कवीश्वर! साहित्य-समुद्र के मन्थन से उत्पन्न हुए अमृत की खूब रक्षा करते रहो; क्योंकि दैत्यों के समान, उसे लूटने के लिए, काव्यार्थ के चोर इस समय बढ़ रहे हैं। यह कह कर आगे दूसरे श्लोक में आप चोरी करने की आज्ञा भी देते हैं। सुनिए:—

गृह्णन्तु सर्वे यदि वा यथेष्टं
नास्ति क्षतिः काऽपि कवीश्वराणाम् ।
रत्नेषु लुप्तेषु बहुष्वमर्त्य-
रद्यापि रत्नाकर एव सिन्धुः ॥
विक्र० सर्ग १, पद्य १२ ।

अथवा सब लोग यथेष्ट काव्यार्थ को हरण करें; उससे कवीश्वरों की कोई हानि नहीं। देखिए, यद्यपि देवताओं ने अनेक रत्न निकाल लिये, तिस पर भी, समुद्र अब तक रत्नाकर (रत्नों की खानि) बना ही हुआ है! इसी न्याय के अनुसार, जान पड़ता है, बिल्हण ने रघुवंश से काव्यार्थ हरण करने में कोई हानि नहीं समझी। यदि आज कल के छोटे मोटे कवि दूसरे का अर्थ हरण करें तो वे किसी

प्रकार क्षमा के पात्र भी माने जा सकते; परन्तु बिल्हण ऐसे महाकवि के लिए ऐसा व्यवहार करना हम फिर भी, अनुचित ही कहेंगे। अच्छा जाने दीजिए, बिल्हण को अर्थापहरण का दोषी न ठहरा कर, केवल अनुकरण करने अथवा दूसरे की उक्तियों का प्रतिबिम्ब ग्रहण करने ही भर के लिए हम उत्तरदाता समझते हैं।

विक्रमाङ्कदेवचरित के नवें सर्ग में जो चन्द्रलेखा के स्वयंवर का वर्णन है वह रघुवंश के छठे सर्ग में वर्णन किये गये इन्दुमती के स्वयंवर का अनुकरण है—थोड़ा नहीं पूरा अनुकरण है। रघुवंश में इन्दुमती के साथ उसकी प्रतीहारी सुनन्दा थी और वही राजाओं का परिचय देती थी। विक्रमाङ्कचरित में भी बिना नाम की एक प्रतीहारी है और वह भी आये हुए राजाओं का वर्णन चन्द्रलेखा को सुनाती है। स्वयंवर में इन्दुमती के आने पर, उसे पाने की इच्छा रखने वाले राजाओं ने अपने मन के भाव अनेक प्रकार की चेष्टाओं से सूचित किये थे; विक्रमाङ्कदेव-चरित में भी वैसी ही चेष्टाओं का वर्णन है। बिल्हण के काव्य के सोलवें सर्ग में मृगया का जो

वर्णन है वह रघुवंश के नवम सर्ग के मृगया-वर्णन का अनुकरण है। विक्रमाङ्क-चरित के बारहवें सर्ग में विक्रम के कल्याण लौटने पर स्त्रियों की भाव-भङ्गियों का वर्णन रघुवंश के सप्तम सर्ग के वर्णन से बहुत कुछ मिलता है। अपने कथन की पुष्टि में हम दो एक उदाहरण प्रत्येक स्थल के देना चाहते हैं—

[१]

तत्रागतानां पृथिवीपतीना-
मासन्विचित्राणि विचेष्टितानि ।
विक्र०, सर्ग ६, पद्य ७५ ।

वहाँ, आये हुए राजाओं ने विचित्र विचित्र प्रकार की चेष्टायें की।

प्रवालशोभा इव पादपानां
शृङ्गारचेष्टा विविधा बभूवुः ।
रघुवंश, सर्ग ६, पद्य १२ ।

वृक्षों के पत्तों की शोभा के समान राजाओं ने अनेक प्रकार की शृङ्गार-चेष्टायें प्रदर्शित कीं।

[२]

श्रीखण्डचर्चापरिपाण्डुरोऽथ
पाण्ड्यः प्रकामोन्नतचारुदेहः ।
विक्र०, सर्ग ६, पद्य ११६ ।

चन्दन के लेप से शुभ्र वर्णवाला, उन्नत देह-धारी, यह पाण्ड्य-नरेश है।

पाण्ड्योऽयमंसार्पितलम्बहार:

क्लृप्ताङ्गरागो हरिचन्दनेन।

रघुवंश, सर्ग ६ पद्य ६०।

हरिचन्दन का अङ्गराग लगाये हुए, और कंधों से हार को लम्बा लटकाये हुए, यह पाण्ड्य-देश का राजा है।

[३]

तत्रापि साऽभूद् गुणभाजनेऽपि

पराङ्मुखी श्रीरिव भाग्यहीने।

विक्र०, सर्ग ६, पद्य ५२१।

भाग्यहीन से जिस प्रकार लक्ष्मी दूर हट जाती है, उसी प्रकार, सद्गुणी होने पर भी उस राजा से वह कन्या हट गई।

तस्मादपावर्तत दूरकृष्टा

नीत्येव लक्ष्मी: प्रतिकूलदैवात्।

रघुवंश, सर्ग ६, पद्य ५८।

नीतिपूर्वक दूर से लाई हुई लक्ष्मी जैसे भाग्य-हीन के पास से चली जाती है वैसे ही वह कन्या भी उस राजा के पास से चली गई।

[४]

वदामि सौभाग्यगुणं किमस्य
यत्र स्थिते श्रीश्च सरस्वती च ।
विक्र०, सर्ग ६, पद्य १३७ ।

इस राजा के सौभाग्य की मैं कहाँ तक प्रशंसा करूँ; इसमें लक्ष्मी और सरस्वती दोनों का एकही साथ निवास है ।

निसर्गभिन्नास्पदमेकसंस्थ-
मस्मिन्द्वयं श्रीश्च सरस्वती च ।
रघुवंश, सर्ग ६, पद्य २९ ।

सदैव अलग अलग स्थानों में रहनेवाली लक्ष्मी और सरस्वती, दोनों, ने इस राजा में, अपने रहने के लिए, एक ही स्थान नियत किया है ।

आसन्विलासव्रतदीक्षितानां
स्मरोपदिष्टानि विचेष्टितानि ।
विक्र०, सर्ग १२, पद्य २ ।

(राजा के पुरप्रवेश के समय) हाव-भावादि में कुशल स्त्रियों की कामप्रेरित अनेक चेष्टायें हुईं ।

बभूवुरित्थं पुरसुन्दरीणां
त्यक्तान्यकार्याणि विचेष्टितानि ।
रघुवंश, सर्ग ७, पद्य ५ ।

और सब कामों को छोड़नेवाली नगर-नारियों की, इस प्रकार, चेष्टायें हुईं।

[६]

अपि शरधिविकृष्टैश्चिच्छिदे कङ्क-पत्रै-
निकटमपि न रोहिद्‌गर्भिणी चक्रवालम्।
स्मरणसरणिमागाद्‌गर्भभारालसानां
विलसितमबलानां यद्‌बलाद्‌भूमिभर्तुः॥
विक्र०, सर्ग १६, पद्य ४५।

बहुत निकट आई हुई भी गर्भिणी-हरिणियों पर, बाणों को तरकस से खींच कर के भी, उसने न छोड़ा; क्योंकि सगर्भा कामनियों की विलास-चेष्टाओं का उस समय उसे स्मरण हो आया।

अपि तुरगसमीपादुत्पतन्तं मयूरं
न स रुचिरकलापं बाणलक्ष्यीचकार।
सपदि गतमनस्कश्चित्रमाल्यानुकीर्णे
रतिविगलितबन्ध्ये केशपाशे प्रियायाः॥
रघुवंश, सर्ग ६, पद्य ६७।

घोड़े के पास से भी निकलजाने वाले रुचिर पक्षधारी मयूर पर उस (दशरथ) ने बाण न चलाया। मयूर को देख, चित्र विचित्र फूलों से

गुँधे हुए अपनी प्रिया के केशपाश का, उस समय, उसे स्मरण आगया।

[७]

रुद्धं विलोक्य हरिणं हरिणी गतापि
व्यावृत्य बाणविषये नृपतेश्चचार।
प्रायेण देहविरहादपि दुःसहोऽयं
सर्वाङ्गसंज्वरकरः प्रियविप्रयोगः॥

विक्र०, सर्ग १६, पद्य ४१।

हरिण को रुद्ध हुआ जान, दूर गई हुई भी हरिणी ने, लौट कर, अपने को (हरिण के स्थान में) राजा के बाण का निशाना बनाया। शरीर-त्याग से भी अपने प्रिय का वियोग प्रायः विशेष दुःसह और सन्तापकारी होता है।

इस पद्य के पूर्वार्द्ध का भाव बिल्हण ने कालिदास से लिया है; परन्तु इसका उत्तरार्ध, सीधा सादा होने पर भी, चित्त में अधिक चुभता है। और पूर्वार्ध से भी अधिक अच्छा है।

लक्ष्यीकृतस्य हरिणस्य हरिप्रभावः
प्रेक्ष्य स्थितां सहचरीं व्यवधाय देहम्।
आकृष्टकर्णमपि कामितया स धन्वी
बाणं कृपामृदुमनाः प्रतिसंजहार॥

रघुवंश, सर्ग ६, पद्य ५७

निशाने में आये हुए (अपने पति) हरिण के शरीर को अपने शरीर से छिपाकर खड़ी हुई उसकी सचहरी हरिणी को देख कर, इन्द्र के समान प्रभाव वाले उस धनुर्धारी राजा (दशरथ) ने, प्रेमशक्ति के कारण दयालु-हृदय होकर, कान तक खींचे हुए भी बाण को उतार लिया।

बिल्हण की अनुकरण-शीलता के इतने उदाहरण बस हुए। अब हम आपकी कविता के दो चार अच्छे अच्छे नमूने सादर उद्धृत करके इस निबन्ध को समाप्त करेंगे।

इसमें कोई सन्देह नहीं कि बिल्हण की कविता बहुत सरस है; और सरस होकर सरल भी है। बिल्हण ने विक्रमाङ्कदेवचरित को वैदर्भी रीति में लिखा है। माधुर्य्यव्यञ्जक ललित-रचना को वैदर्भी रीति कहते हैं। इस लक्षण के अनुसार ही बिल्हण ने विक्रमाङ्कदेवचरित की कविता की है। आहवमल्ल की मृत्यु, राज्य के मद से उन्मत्त हुए सोमेश्वर की अनीति और वर्षा आदि का वर्णन बिल्हण ने बहुत ही अच्छा किया है। विक्रमाङ्कदेवचरित में स्थल स्थल पर उत्तमोत्तम प्रसाद-पूर्ण पद्य पाये जाते हैं। देखिए:—

काव्य-सम्बन्धिनी पद-रचना के विषय में बिल्हण अपना मत लिखते हैं:—

प्रौढिप्रकर्षेण पुराणरीति—
व्यतिक्रमः श्लाघ्यतमः पदानाम् ।
अत्युन्नतिस्फोटितकञ्चुकानि
वन्द्यानि कान्ताकुचमण्डलानि ॥

सर्ग १, पद्य १५ ।

पदों को अधिक प्रौढ़ करके पुरानी रीति की प्रतिकूलता करनाही अच्छा है—अत्यन्त उन्नति के कारण कञ्चुकी को फाड़ने वाले कान्ता के कुच-मण्डल की प्रशंसा ही होती है !

कल्याण-नगरी के वर्णन के अन्तर्गत वहाँ की कामिनियों का वर्णन:—

अविस्मृतत्र्यम्बकनेत्रपावकः
स्मरः स्मितेन्दीवरदीर्घचक्षुषाम् ।
विलासपीयूषनिधानकुम्भयो—
र्न यत्र वासं कुचयोर्विमुञ्चति ।

सर्ग २, पद्य १६ ।

त्रिलोचन के तीसरे लोचन से निकली हुई आग को अब तक न भूलने वाला काम, कल्याण में रहने वाली कमल-नयनी-नारियों के विलासा-

मृत से भरे हुए कुम्भरूपी स्तनद्वय में अपना निवास-स्थल बनाकर उसे एक मिनट के लिए भी नहीं छोड़ता ! जले हुए को पियूष से अधिक और क्या हितकार हो सकता है !

जिस समय विक्रमाङ्कदेव गर्भ में था उस समय उसकी माता की अवस्था का वर्णनः—

निपीड्य चन्द्रं पयसे निवेशिता
ध्रुवं तदीयस्तनकुम्भयोः सुधा ।
यदुत्पलश्यामलमाननं तयोः
सलाञ्छनच्छायमिव व्यराजत ॥
सर्ग २, पद्य ६३ ।

इसमें कोई सन्देह नहीं कि चन्द्रमा को निचोड़ कर उससे निकला हुआ अमृत उस राज-महिषी के स्तनरूपी घड़ों में भर दिया गया। अन्यथा नील-कमल के समान उनका मुख, चन्द्रमा के काले कलङ्क की तरह, क्यों शोभायमान होता? बिल्हण जी ! जैसी आपकी रसिकता वैसी ही आप की उक्ति ! अब आप की और तरह की उक्तियाँ सुनिए।

राज्य पाने के अनन्तर सोमेश्वर का लक्ष्मीमदः—

मदिरेव नरेन्द्रश्रीस्तस्याभून्मदकारणम् ।
न विवेद परिभ्रष्टं यदशेषं यशोऽशुकम् ॥
सर्ग ४, पद्य ६८ ।

राज्य-लक्ष्मी ने उसे ऐसा उन्मत्त कर दिया जैसा मदिरा उन्मत्त कर देती है। यदि वह उन्मत्त न हुआ होता तो यशोरूपी सारा वस्त्र गिर जाने पर भी क्या उसे ज्ञान न होता ?

वसन्त-वर्णन के अन्तर्गत मलयानिल का वर्णन :—

कृतप्रकोपाः पवनाशनानां
निवासदानादिव पन्नगानाम् ।
विनिर्ययुश्चन्दनशैलकुञ्जा—
दाशामुदीचीमिव गन्धवाहाः ॥
सर्ग ७, पद्य ५ ।

पवन-भक्षी सर्पों को इसने अपने आश्रय में रक्खा ; इसी लिए कुपित सी होकर सुगन्धित पवन, मलयाचल को छोड़, उत्तर-दिशा की ओर चली।

चन्द्रलेखा की आँखों का वर्णन—

मृगीसम्बन्धिनी दृष्टिरसौ यदि न सुभ्रुवः ।
धावति श्रवणोत्तंसलीलादूर्वाङ्कुरे कुतः ॥
सर्ग ८, पद्य ७२ ।

यदि इस सुन्दर-भृकुटीवाली ने अपनी दृष्टि हरिणियों से नहीं पाई तो वह कान पर रक्खे हुए दूर्वादल की ओर क्यों दौड़ती है ? सच है, दूब

की ओर दौड़ना दृष्टि का हरिणियों ही से सम्बन्ध सूचित करता है ! उसके नेत्र इतने बड़े थे कि कान तक चले गये थे, यह भाव।

सन्ध्या-वर्णन—

मानुमानपरदिग्वनिताया-
श्चुम्बतिस्म मुखमुद्गतरागः ।
पद्मिनी किमु करोतु वराकी
मीलिताम्बुरुहनेत्रपुटाऽभूत् ॥

सर्ग ११, पद्य ६ ।

रागवान् * होकर सूर्य ने अन्य-दिशारूपी-स्त्री (अर्थात् पश्चिम-दिशा) का मुख-चुम्बन † किया। यह अनर्थ होता देख बेचारी कमलिनी से और कुछ न बन पड़ा; उसने केवल अपने कमलरूपी नेत्र बन्द कर लिये। और करती क्या ?

वर्षा के अन्तर्गत मयूरों का वर्णन करते हुए विक्रमाङ्कदेव अपनी रानी चन्द्रलेखा से कहता है—

* रागवान् के यहाँ दो अर्थ हैं—अनुरागशील और अरुण-वर्ण।

† अर्थात् पश्चिम की ओर गया।

द्विषन्ति राजीवमुखि ! स्वजीवितं
ध्रुवं मयूरास्तव निर्जिताः कचैः ।
भवन्ति यद्वासवचापसम्मुखाः
शिलीमुखप्राप्तिसमुत्सुका इव ॥
सर्ग १३, पद्य २७ ।

हे कमल-लोचनी ! तेरे केश-कलाप से जीते जाने के कारण, अपने जीवन को धिक्कार समझ कर, ये मयूर अवश्य ही आत्महत्या करना चाहते हैं; क्योंकि, अपने शरीर को शरों से छेदने की इच्छा से ही मानों ये इन्द्र-धनुष के सम्मुख हो रहे हैं। बिल्हण ने क्या ही अच्छा कारण बताया है! 'विद्यापति' ही ठहरे।

हेमन्त-वर्णन—

मद्वैरिणः कठोरांशोरियं प्रणयभूरिति ।
रोषादिव तुषारेण निरदह्यत पद्मिनी ॥
सर्ग १६, पद्य १४ ।

"मेरे बैरी सूर्य की यह प्रणयिनी है"—यही समझ कर, जान पड़ता है, तुषार ने कमलिनी को जला दिया !

कवि-सम्बन्धिनी बिल्हण की एक और उक्ति को उद्धृत करके, हम, लेखनी को विश्राम देना चाहते हैं—

लङ्कापतेः सङ्कुचितं यशो य-
द्यत्कीर्तिपात्रं रघुराजपुत्रः ।
स सर्व एवादिकवेः प्रभावो-
न कोपनीयाः कवयः क्षितीन्द्रैः ॥

सर्ग १, पद्य २७ ।

लंकेश्वर रावण का यश जो धूल में मिल गया और रघुनायक रामचन्द्र की कीर्ति जो दिगन्त में व्याप्त होगई—वह सब एक आदि-कवि वाल्मीकि ही का प्रभाव है। राजाओं को चाहिए कि, कवियों को वे कभी कुपित न करें। हम भी 'तथास्तु' कहते हैं और कालिदास के रघुवंश की अनुकरण-शीलता का दोष लगाने का अपराध करके बिल्हण से त्रिवार क्षमा-प्रार्थना-पूर्वक इस चर्चा को समाप्त करते हैं।

———

परिशिष्ट ।

(१)

यह निबन्ध लिख चुकने पर 'बिल्हण काव्यम्' नामक एक छोटी सी पुस्तक हमारे देखने में आई। इसके अन्त में लिखा है:—

इति काश्मीरिकबिल्हणकविविरचितं
बिल्हणचरितापरनामधेयं
चन्द्रलेखासक्त-बिल्हणकाव्यम्

इससे सूचित होता है कि ख़ुद बिल्हण ही ने इसे बनाया है। क्योंकि बिल्हण नाम का और कोई कवि नहीं सुना गया। परन्तु यह ठीक नहीं। इस कविता में बिल्हण को एक तृतीय पुरुष मान कर सब बातें वर्णन की गई हैं। फिर इस पुस्तक-च्युत-संस्कृत दोष भी बहुत हैं। एक और बात यह है कि इसमें:—

"नीतानि नाशं जनकात्मजार्थे
दशाननेनापि दशाननानि"

आदि, विद्यासुन्दर आदि काव्यों के भी श्लोक हैं। अतएव बिल्हण के बाद होने वाले कवियों की कविता का इसमें पाया जाना यह साबित करता है कि इसके कर्त्ता बिल्हण नहीं। किसी और ही ने इसकी रचना बिल्हण के नाम से कर दी है। सम्भव है काश्मीर में और कोई बिल्हण हुआ हो। उसी ने इसे लिखा हो।

इस पुस्तक में सिर्फ़ बिल्हण और शशिकला की आख्यायिका है। इसी आख्यायिका के आधार पर इसकी रचना हुई है। इसमें यह आख्यायिका इस प्रकार वर्णन की गई है:—

गुजरात में महिलपत्तन एक जगह है। वहाँ वीरसिंह नाम का एक राजा था। उसने अवन्ती के राजा अतुल की कन्या सुतारा से विवाह किया। सुतारा के गर्भ से शशिकला नाम की एक लड़की पैदा हुई। उसके अध्यापन का विचार राजा कर रहा था कि काश्मीरक पण्डित बिल्हण वहाँ पहुँचे। बिल्हण की तारीफ़ राज-पुरोहित राजहंस ने वीरसिंह से की। वीरसिंह बिल्हण से मिलकर बहुत प्रसन्न हुआ। उसने चन्द्रकला को बुला कर उसके अध्यापन का काम बिल्हण के सिपुर्द किया।

बिल्हण उसे पढ़ाने लगे। राजकन्या बड़ी कुशाग्र-बुद्धि थी। वह थोड़े ही दिनों में पण्डिता हो गई:—

"स्तोकैर्दिनैः शशिकला विदुषी बभूव"।

पण्डिता हो चुकने पर उसे बिल्हण काम-शास्त्र पढ़ाने लगे। शशिकला बिल्हण की "पूर्व-जन्म-पत्नी" थी। यह शास्त्र पढ़ते पढ़ते वह बिल्हण में अनुरक्त हो गई और दोनों ने छिपे छिपे गान्धर्व विवाह कर लिया।

बिल्हण-काव्य की कई प्रतियाँ मिलती हैं। एक में लिखा है कि वीरसिंह ने शशिकला का हाथ बिल्हण के हाथ में देकर कहा, आप इसे पढ़ा कर विदुषी कर दीजिए। इससे मालूम हुआ कि शशिकला और बिल्हण में पर्दा न था। दोनों पास पास बैठ कर अध्ययन-अध्यापन करते थे। पर दूसरी प्रति में लिखा है कि बीच में जवनिका (पर्दा) डाल कर अध्ययन-अध्यापन होता था। इस प्रति में लिखा है कि एक दिन बिल्हण ने शशिकला को सुना कर यह श्लोक पढ़ा:—

जातं सुजन्म विफलं भुवने नलिन्या

दृष्टं यया न विमलं तुहिनांशुबिम्बम्।

यावच्छ्रुतं सुवचनं सुकवेस्तयेत्थं
किञ्चिद्विहस्य तुहिनांशुकला बभाषे ॥

अर्थात् जिस कमलिनी ने चन्द्रबिम्ब का दर्शन न किया उसका जन्म ही वृथा है। इस उक्ति को सुन कर चन्द्रकला ने कहा:—

हृष्टानि कोकमिथुनानि भवन्ति यैश्च
सूर्यांशुभिर्जगदिदं निखिलार्थमेति।
सम्पूर्णतापि शशिनश्च हि निष्फलैव
दृष्टा यया न नलिनी परिपूर्णरूपा ॥

अर्थात् जिस चन्द्रमा ने कमलिनी का दर्शन न किया उसकी सम्पूर्णता भी तो निष्फल है। मतलब यह कि दोनों ने परस्पर एक दूसरे को देखना चाहा। जवनिका हटी। उनका पारस्परिक मनोरथ सिद्ध हुआ।

इसके बाद बिल्हण और शशिकला बराबर मिलते रहे। धीरे धीरे यह बात शशिकला की परिचारिकाओं को मालूम हो गई। उन्होंने राजपुरोहित से कहा। पुरोहित ने एक स्त्री के द्वारा सन्देश भेज कर बिल्हण को इस गर्हित व्यवहार से विरत होने की सलाह दी। पर बिल्हण ने उस की एक न सुनी।

तब पुरोहित ने वीरसिंह को ख़बर दी। अन्त में मन्त्रियों की सलाह से बिल्हण को सूली पर चढ़ाने का हुक्म हुआ। बिल्हण शशिकला के मन्दिर में पकड़े गये। उन्हें वधिकों ने बाँधा और वध्य भूमि को ले चले। वहाँ उनसे कहा गया कि स्नान करके अपने इष्ट देव का स्मरण कीजिए। बिल्हण ने कहा हमारी इष्ट देवता राज-कन्या ही है। अतएव उसी का हम चिन्तन करते हैं। यह कह कर आपने अपनी प्रसिद्ध पञ्चाशिका की रचना आरम्भ की और पचास पद्य बराबर पढ़ते गये। ये पद्य भी इस पुस्तक में हैं। अन्त में आपने कहा कि हमने जो कुछ पुण्य किया हो उसका फल हम यही चाहते हैं कि हर जन्म में शशिकला ही हमारी पत्नी हो। यह कह कर आप वध किये जाने के लिए तैयार हो गये। जो राजसेवक बिल्हण के साथ वधस्थल पर गये थे वे बिल्हण की कविता, दृढ़ता और चन्द्रकला-विषयक अकृत्रिम प्रीति देख कर चकित हो उठे। उन्होंने राजाज्ञा पर बहुत दुःख प्रकट किया और कहा कि हम ब्रह्महत्या की गुरुता को जानते हैं; पर राजा की आज्ञा को टाल नहीं सकते। लाचारी है। कुछ स्त्रियों ने भी यह सब दृश्य देखा।

उधर चन्द्रकला के घर से जब बिल्हण निकाले गये, और उनके विषय में पिता की कठोर आज्ञा चन्द्रकला ने सुनी, तब उसने भी मर जाना निश्चय किया। वह अपने महल की छत पर चढ़ गई और नीचे गिर कर प्राण देने की तैयारी करने लगी। इसी समय कुछ स्त्रियाँ उसके महल में गईं और चन्द्रकला को मरने के लिए उद्यत देख घबरा उठीं। वे दौड़ी हुई चन्द्रकला की माँ के पास आईं और सब हाल बयान किया। उधर वधस्थल का दृश्य जिन स्त्रियों ने देखा था वे भी चन्द्रकला की माँ के पास आईं और बिल्हण की अनुरक्ति आदि का वर्णन किया। इन बातों को सुन कर चन्द्रकला की माँ, सुतारा, फूट फूट कर रोने लगी। दौड़ती हुई वह वीरसिंह के पास गई और कहा कि तुम्हारी आज्ञा ब्रह्महत्या और कन्या की आत्म-हत्या दोनों का कारण होगी। वीरसिंह ने अपने पुरोहित और मंत्रियों से सलाह की। उन्होंने कहा, ब्रह्महत्या और स्त्री-हत्या दोनों घोर पातक हैं। उनसे हमेशा आदमी को बचना चाहिए। इस पर वीरसिंह ने बिल्हण को माफ़ कर दिया और विवाह-विधि-पूर्वक चन्द्रकला भी उसे दे डाली। एक सौ गाँव, हाथी,

घोड़े और धन भी दिया। पुस्तक के अन्त में लिखा है कि जो लोग इस चरित को पढ़ेंगे उनको अन्त में परमधाम की प्राप्ति होगी!

विचार करने से मालूम होता है कि सुनी हुई पुरानी आख्यायिका के आधार पर ही किसी ने इस काव्य की रचना पीछे से की है। यह काव्यमाला तेरहवें गुच्छक में छपा है। इसके निर्म्माण-काल और कर्ता आदि का वहाँ पर कुछ भी उल्लेख नहीं, कहाँ से इस काव्य की प्रतियाँ काव्यमाला के सम्पादकों को मिलीं, यह भी नहीं लिखा। ख़ैर जो कुछ हो, बिल्हण-विषयक सब बातों का सन्निवेश इस निबन्ध में करने के लिए हमने इस काव्य का सारांश भी लिख दिया।

डफ़ नाम की एक विदुषी ने अँगरेज़ी में एक किताब लिखी है। उसमें इस देश की प्राचीन घटनाओं आदि का संक्षिप्त उल्लेख और उनके सन् संवत् दिये हैं। पर महिलपत्तन नामक नगर का नाम न तो हमें इस पुस्तक में मिला और न और ही कहीं। वह अन्हिल-पत्तन का ही अपभ्रंश जान पड़ता है। रहा वीरसिंह का काल सो वह बिल्हण के सौ वर्ष पहले ही सिद्ध होता है। सम्भव

है वीरसिंह के कालनिर्णय में ग़लती हो। अवन्ती के राजा अतुल का कोई पता नहीं चलता। पुरातत्त्व के पारदर्शी शायद उसका पता लगा सकें। यदि उसके समय का निर्णय हो जाय तो वीरसिंह के कालनिर्णय की भी पुष्टि हो जाय।

बिल्हण-काव्य में जो बिल्हण को सौ गाँव आदि दिये जाने की बात है वह सन्देहजनक जान पड़ती है। यदि बिल्हण को सौ गाँव और हाथी घोड़े मिलते तो क्यों वे दक्षिण में इधर उधर घूमते फिरते और ख़ुद तअ़ल्लुक़ेदार हो कर क्यों विक्रमाङ्कदेव के आश्रय में रहते?

परिशिष्ट ।

(२)

"बंबई गैज़ेटियर" तथा पुरातत्त्व के पारदर्शी पण्डितों की पुस्तकों से मालूम होता है कि चालुक्य-वंशीय राजाओं का किसी समय दक्षिण में बड़ा प्रभुत्त्व था। इस वंश की दो शाखायें हुई हैं-पूर्व-कालीन और उत्तरकालीन।

पूर्वकालीन राजाओं की राजधानी वातापिपुर थी। इस जगह का वर्तमान नाम बादामी है। यह नगर बीजापुर ज़िले में है। इस शाखा का पहला राजा जयसिंह ईसवी सन के छठे शतक के आरम्भ में हुआ। सब मिला कर ११ राजे इस शाखा के हुए। अन्तिम राजा दूसरा कीर्त्तिवर्म्मा हुआ। ७४७ ईसवी के लगभग इस शाखा की समाप्ति हुई। इस शाखा का सब से अधिक राजा दूसरा पुलकेशी हुआ। इसने क़न्नौज के प्रसिद्ध राजा हर्षवर्धन (शिलादित्य) को परास्त किया। पुलकेशी सार्वभौम राजा था। वह ९० हज़ार गाँवों का अधीश्वर था। इसी के राजत्व-काल में चीन का प्रवासी ह्वान्थसांग भारत में आया था। इस प्रवासी ने अपने प्रवास

का जो वर्णन लिखा है उसमें पुल केशी के प्रभुत्व आदि का लंबा चौड़ा उल्लेख है।

इस शाखा का सातवाँ राजा विक्रमादित्य (प्रथम) हुआ। इसी के राजत्त्व में इस वंश की एक शाखा गुजरात के अनहिलपट्टन में स्थापित हुई। विक्रमादित्य का भाई, जयसिंहराज, वहाँ का पहला राजा हुआ। इस वंश की गुजरात में दो तीन शाखायें हुईं। आठवीं शताब्दि में इस शाखा का गुजरात में अन्त हो गया।

७५३ ईसवी में पूर्वकालीन चालुक्यों का अधिकार राष्ट्रकूट के राजा दंतिदुर्ग ने छीन लिया। तब से महाराष्ट्र देश में राष्ट्रकूटों की सत्ता का प्रसार हुआ।

महाराष्ट्र में राष्ट्रकूटों की सत्ता कोई २०० वर्ष तक रही। इस दरमियान में चालुक्यों के वंशजों में कोई नाम लेने लायक़ राजा नहीं हुआ। परन्तु दसवीं शताब्दि के मध्य में चालुक्य-वंशीय तैलप राजा ने राष्ट्र-वंशीय कक्कल राजा से दक्षिण-देश का सार्वभौमत्व छीन कर उत्तर-कालीन चालुक्य-वंशीय राजाओं की शाखा की स्थापना की। इस शाखा में सब मिला कर ११ राजे हुए। यथा—

१ तैलप
२ सत्याश्रय
३ विक्रमादित्य (१)
४ जयसिंह
५ सोमेश्वर (१) उपनाम आहवमल्ल
६ सोमेश्वर (२)
७ विक्रमादित्य (२) उपनाम विक्रमाङ्कदेव
८ सोमेश्वर (३)
९ जगदेकमल्ल
१० नूर्मडि तैलप
११ सोमेश्वर (४)

अन्तिम राजा सोमेश्वर (४) ने ११८२ से ११८९ ईसवी तक राज्य किया। तदनन्तर दक्षिण का सार्व-भौमत्व यादव-वंशीय राजाओं के हाथ में गया।

विक्रमाङ्कदेव इसी उत्तर-कालीन चालुक्य-शाखा का सातवाँ राजा था। इसने १०७६ से ११२६ ईसवी तक राज्य किया। इसके पिता का ठीक नाम सोमेश्वर था; पर वह आहवमल्ल भी कहलाता था। बिल्हण ने उसे आहवमल्ल ही लिखा है। किसी किसी शिलालेख से मालूम होता है कि इस राजा

की उपाधि 'त्रैलोक्यमल्ल' भी थी। इसी ने कल्याण नामक नगरी बसाई।

बिल्हण ने विक्रमाङ्कदेव के भाई सोमेश्वर और जयसिंह आदि के विषय में जो कुछ लिखा है उसका बहुत कुछ अंश ताम्र-पत्रों और शिला-लेखों से मिलता है। बिल्हण ने लिखा है कि आलुप के राजा ने भी विक्रमाङ्कदेव की अधीनता स्वीकार की। यह आलुप नगर अर्वाचीन 'अलुपै' अनुमान किया जाता है अलुपै मलावार के समुद्री किनारे पर एक क़सबा है।

विक्रमाङ्कदेव ने ५० वर्ष राज्य किया। उसने 'कलिविक्रम' और 'परमाडिराय' किंवा 'परमर्दिदेव' उपाधियाँ धारण कीं। उसने 'शक' संवत् का प्रचार बन्द करके अपने नाम से एक संवत् चलाया, पर वह चला नहीं। जिस चन्द्रलेखा का उल्लेख बिल्हण ने किया है और जिसके स्वयंवर का वर्णन बड़ी धूमधाम से लिखा है उसका असल नाम, शिलालेखों के अनुसार, चन्दलदेवी था।

विक्रमादित्य विद्वानों का बड़ा आश्रयदाता था। बिल्हण के सिवा प्रसिद्ध मिताक्षरा के कर्ता विज्ञानेश्वर भी उसके आश्रित थे। यह बात मिता-

क्षरा के अन्त में जो तीन श्लोक हैं उनसे साबित होती है। ये श्लोक बहुत करके मिताक्षरा की सभी हस्त-लिखित प्रतियों में पाये जाते हैं इनका मतलब है—"दुनिया में कल्याण ऐसा शहर नहीं; विक्रमादित्य ऐसा राजा नहीं; श्रौर विज्ञानेश्वर ऐसा पण्डित नहीं। विक्रमादित्य राजा यावच्चन्द्रदिवाकर जीवित रहे! उसकी वाणी से शहद टपकता है। वह याचकों को यथेच्छ धन देता है। वह विष्णु का ध्यान करता है। उसने षड्रिपुओं को जीत लिया है। पश्चिम समुद्र से लेकर पूर्व-समुद्र तक जितने राजे हैं सब उसके आज्ञाकारी हैं।"

इससे मालूम होता है कि बिल्हण श्रौर विज्ञानेश्वर का आश्रयदाता विक्रमादित्य बड़ा प्रतापी राजा था। उसके समय के कोई दो सौ शिला-लेख मिले हैं, जो इस बात को पुष्टि करते हैं।

श्री सयाजी बाळज्ञानमाळा.

श्री हर्ष

१२

श्री सयाजी बाल ज्ञान माला—पुष्प १९ वां.

(चरित्र-गुच्छ)

श्री हर्ष

अनुवादक

आनन्द [illegible] मारामजी बी. ए. एलएल बी.

औरंगजेब [illegible] भाव और बालपालन के अनुवादक

प्रकाशक.

जयदेव ब्रदर्स बड़ोदा

Printed at the Lakshmi Vilas Press by K. G. Patel, Published by Anand Priya B. A. LL. B. Karelibag Baroda, 10-2-1922.

इ. स. १९२२. संवत् १९७८

प्रथमावृत्ति. प्रति ५००

मूल्य ०-८-०

श्री.

विज्ञप्ति.

अपने देशी भाषा के साहित्य की उन्नति कराने के उत्तम उद्देश्य से **श्रीमंत महाराजा साहब सर सयाजीराव गायकवाड़** सेनाखासखेल, समशेर बहादुर, पतितपावन जी. सी. एस. आई, जी. सी. आई. ई, ने कृपा पूर्वक दो लाख रुपया सुरक्षित रख दिया है, उसके व्याज में से जिन्होंने अनिवार्य शिक्षण पूर्णकर विद्यामार्ग प्राप्त किया है, ऐसे बालकों के लिये जो उपयोगी हो सके ऐसी सुगम सरल भाषा में लिखे गए विविध विषयों का लोक साहित्य रचाकर उसे "**श्री सयाजी बाल ज्ञान माला**" नामक ग्रंथावली द्वारा प्रकाशित कराने की योजना की गई है।

इस योजना के अनुसार श्रीयुत आनन्दप्रिय आत्मारामजी से 'श्री हर्ष' नामक यह पुस्तक अनुवाद कराई गई है, और इसे उक्त "**बाल ज्ञान माला**" के "चरित्र गुच्छ के पुष्प १९ के रूप में विद्याधिकारी की भाषांतर शाखा द्वारा नियमानुसार संशोधन कराकर प्रकाशित किया जाता है।

विद्याधिकारी कचेरी, भाषांतर शाखा ता. २०-१०-१९२९	ज. पु. जोशीपुरा भा. म.	आ. मे. मसानी विद्याधिकारी बड़ोदा राज्य.

ओ३म्

श्री हर्ष

विषय सूची अनुक्रमणिका

परिशिष्ट

ओ३म्

अनुवादक की भूमिका

भारत के प्राचीन इतिहास की सामग्री किस प्रकार संस्कृत साहित्य में भरी पड़ी है यह बात इस उत्तम लघु पुस्तक के पढ़ने से जनता को भली प्रकार मालूम हो सकती है।

बाणभट्ट के श्री हर्ष काव्य के अतिरिक्त ग्रन्थ कर्ता श्री भरतराम भानुसुखराम मेहता ने हर्षचरित के तथा अन्य अनुसंधान प्रेमी लेखकों से सहायता लेकर जो [illegible] वे इतिहास सम्बन्धी [illegible] हैं वह [illegible] उपयोगी हैं।

आजकल इतिहास का विषय सर्व साधारण जनता के लिये सर्वत्र रूखा और फीका हो जाता है यह बात निर्विवाद है। संभव है कि प्राचीन काल के विद्वानों ने इस दोष की निवृत्ति के लिये उसको कविता के रसमय रूप में लिखना उचित समझा हो। रामायण, महाभारत के अतिरिक्त सर्व काव्य ग्रन्थ इतिहास की सामग्री से भरपूर है यह बात प्रत्यक्ष ही है। कई कारणों से हमें अपना सच्चा इतिहास नहीं मालूम हो सका। अभी हमारे इतिहासकार सब विदेशी हैं उन लोगों ने हमारे इतिहास खोजने में बहुत श्रम किया है जिसका श्रेय उन्हें

मिल रहा है, परन्तु इन इतिहासों में एक भारी त्रुटि यह रह जाती है कि उनकी दृष्टि और भारतीय दृष्टि मे अन्तर है जहां वह हमारी बातें समझ नहीं सकते वह उसे Superstitious अथवा कल्पित बातें कह कर टाल देते हैं। इस समय आवश्यकता है कि पढ़े लिखे भारतीय अपने इतिहास का अनुशीलन कर अपनी विद्या को यथार्थ करें।

इस समय यदि देश में संस्कृत भाषा का अधिक प्रचार होने लगे तो संस्कृत साहित्य के मूल आधार पर भारत का आदिकाल से लेकर आज तक का शृंखलाबद्ध इतिहास तैय्यार करने के लिये अनेक विद्वान मिल सकते हैं। हमारे ग्रामों में सैकड़ों हस्तलिखित पत्र तथा पुस्तकें भरी पड़ी हैं परन्तु हम नवशिक्षित वर्ग इसे कूड़ाकर्कट समझते हैं परन्तु धन्य हैं विदेशी लोग जो सात समुद्र पार कर के ग्राम ग्राम घूम इन्हें इकट्ठा कर स्वदेश भेज देते हैं। यदि हम सच्चे जौहरी हैं तो इन की परख करना सिखेंगे किन्तु यदि हम भूले रहे, तो हमारी इतिहास सामग्री शनैः शनैः सब बाहर चली जायगी। **प्रत्येक स्वदेशाभिमानी का कर्तव्य है कि पुराने हस्तलिखित ग्रन्थों, पत्रों, वा लेखों की रक्षा करे तथा योग्यता प्राप्त कर उसे सम्पादित करे।**

प्रस्तुत पुस्तक के विचार पूर्वक पढ़ने से निम्नलिखित ऐतिहासिक बातें पाठक जान सकेंगे—

(१) श्री हर्ष का राज्य हिमालय से नर्बदा तक था

(२) आधीन राजाओं साथ उदार राजनीति का बर्ताव किया जात [illegible]

(३) चीन के साथ [illegible] मित्रता थी।

(४) उस समय [illegible] में उच्च कुल की विधवाओं के पुनर्विवाह होते थ

(५) स्त्रियों मे परदे [illegible] प्रथा नहीं थी।

(६) [illegible] में [illegible] किन्तु [illegible] में।

(७ आर्य्य भोजन [illegible] मदिरा से रहित भोजन का प्रचार था।

(८) विद्या का बहुत प्र[illegible] था।

(९) रोगी सेवा आदि के [illegible] पूर्ण प्रबन्ध था।

(१०) दान की शुभ प्रथा था।

(११) नगरों तथा मनुष्यों के नाम संस्कृत भाषा के शब्दों द्वारा रखे जाते थे।

(१२) हिन्दु प्रजा का नाम आर्य्य प्रजा था।

(१३) इस समय बौद्ध धर्म आर्य्य धर्म से भिन्न न था, जैसा कि इस पुस्तक के पाठ से स्वयं विदित हो जायगा।

(१४) एकही परिवार में पिता यदि शैव मत का था तो पुत्र बौद्धमत का, माता सूर्यकी उपासक तो पुत्री वैष्णव—इस प्रकार उनमें धार्मिक सहिष्णुता अमेरिका देश समान ही थी

कई लोगोंका ऐसा आक्षेप रहता है कि बौद्ध धर्म के तत्व वेदों में नहीं पाये जाते इसके उत्तर में हमारा निवेदन है कि निस्सन्देह पाये जाते हैं जैसे—

बौद्ध धर्म का प्रथम सूत्र वा नियम अहिंसा है। इस नियम का निम्न वेद मंत्रों में समावेश हो जाता है –(१)... पशून पाहि यजु. अ; १ मं. १

(२) दृते:..... मित्रस्याहं सर्वाणि भूतानी समीक्षे मित्रस्य चक्षुषा समिक्षा महे— यजु अ ३६ मं १८

दूसरा नियम सत्य है इसकी पुष्टि में निम्न वेद मंत्र है—अग्ने व्रतपते......सुर्पामि य. अ. १ मंत्र ५

तीसरा नियम अस्तेय है- यह मा गृधा कस्य स्विद्धनम् यजु अ. ४० मंत्र १ से पुष्ट होता है

चौथा नियम ब्रह्मचर्य है - निम्न वेद मंत्र में इसका समावेश होता है—ब्रह्मचर्य्येण कन्या युवान विन्दते पतिम् अथर्व. का. १५ मंत्र १८— ब्रह्मचर्य्येण तपसा देवा मृत्युमुपाघ्नत अथर्व. का. ११ मंत्र १९.

पांचवा नियम अपरिग्रह है—इसकेलिये ' तेन त्यक्तेन भुंजीथा यजु. अ. ४० मं. १ है।

अतः यह सिद्ध हो सकता है कि बौद्ध नियम वेदमंत्रों से भिन्न नहीं परन्तु उनके अनुकूल ही हैं और बौद्ध धर्म वैदिक धर्म से उस समय भिन्न नहीं पर शाखारूप ही समझा जाता था।

इस पुस्तक में एक स्थल पर ऐसा वर्णन आया है कि श्री हर्ष की माता को ऐसा स्वप्न आया कि तीन बालक उसके गर्भ में प्रविष्ट हुये, और स्वप्नानुसार उसने तीन ही बालकों को जन्म दिया। यह बात उसके मन की संकल्प शक्ति का बोधन कराती है। हमें याद होगा कि दृढ़ इच्छा शक्ति के कारण बाबर ने अपने ज्येष्ठ पुत्र हुमायुं की बीमारी हरली थी इसी प्रकार रानी के विचारों का प्रभाव उसकी भावी सन्तानों पर पड़ा। वह स्वप्न उसके मनके विचारों की प्रबलता बतलाता है और कुछ विशेष बात नहीं।

इसके उपरान्त एक दो स्थल पर शकुन और अपशकुन का वर्णन आता है। वास्तव में यह भी मन के शुभ अथवा अशुभ विचार हैं। इसी पुस्तक के एक उदाहरण से यह स्पष्ट हो जायगा। एक स्थलपर श्रीहर्ष को किसी ने स्वर्ण मुद्रा भेंट दी। लेते समय वह उसके हाथ से गिर पड़ी। आसपासके लोगों ने इसे अपशकुन समझा किन्तु हर्षने कहा कि जिस प्रकार इस मुद्रा का आकार कीचड़ पर पड़ा है उसी प्रकार मेरी सत्ता का प्रभाव सबपर पड़ेगा। इससे यह सिद्ध है कि शकुन अपशकुन कुछ नहीं केवल भिन्न भिन्न लोगों के मानसिक विचारों से इन्हे बुरा भला बना लिया गया है।

जरूरत है कि इतिहास प्रेमी पाठक इस बालोपयोगी पुस्तक को पढ़ें और अपने बालकों को पारितोषिक रूप में दें जिससे वह अपनी मातृभाषा में अपने राजाओं का गौरव पढ़

स्वदेशभिमानी बनें यह पुस्तक सयाजी बालज्ञानमाला में प्रकाशित हुआ है। इस माला के इसी प्रकार अन्य बालोपयोगी ग्रंथ तैय्यार हो रहे हैं। बालकों के हित चिन्तकों को इस माला से लाभ उठाना चाहिये।

कारेलीबाग
बड़ोदा
१–८–२२

विनीत.
आनन्दप्रिय (अमृतसरी)
बी॰ ए. एलएल॰ बी.

॥ ओ३म् ॥

श्री हर्ष

अपनी भारत भूमि का अति प्राचीन इतिहास बहुत ही रोचक तथा स्वदेशाभिमान कारक है, तिस पर भी हमारे प्राचीन इतिहासकारोंने जैसा चाहिये वैसा कोई भी इतिहास नहीं लिख रखा, और विशेष कर इ. स. पूर्व ६०० का इतिहास अभी तक वास्तव में अन्धकार में ही पड़ा हुआ है। इसवी सन पूर्व ७०० के पश्चात् का इतिहास भिन्न भिन्न साधनों द्वारा तय्यार हो सका है, परन्तु इस से यहां हमारा सम्बन्ध नहीं है। हमें यहां पर केवल यह याद रखना चाहिये कि इसवी सन ३२० में उन्नति के शिखर पर आरूढ़ गुप्त वंश इ. स. ५३८ में राजा कुमार गुप्त द्वितीय की मृत्यु पर

सत्ताहीन हो गया, और तब इस के छिन्नभिन्न वंशज भारत के कई अलग अलग स्थलों पर राज्य करने लगे। गुप्त वंशी राजाओं के अन्तिम काल में हूण जाति द्वारा भारत पर आक्रमण हुआ, तब मालवा के राजा यशोधर्म तथा मगध के बलादित्य ने मिलकर उन्हें मार भगाया। इस के पश्चात् गुप्त वंश के राज्य विस्तार में अनेक नवीन राज्य प्रख्यात हुए। इनमें श्रीकण्ठ अन्तर्गत स्थाणीश्वर (थानेश्वर) के वर्धन और कान्यकुब्ज (कन्नौज) के मौखरि मुख्य थे। इन्हों ने भी हूण लोगों के हराने में भाग लिया था।

हर्ष के पूर्वज

कन्नौज के वर्धन वंशीओं में से पुष्प भूति नामक राजा हमारे चरित्र नायक श्री हर्ष वर्धन का बहुत दूर का पूर्वज था, ऐसा उस समय के कवि बाण ने अपने रचित 'हर्ष चरित' में लिखा है। मधुबन तथा बंसखेर के प्राप्त ताम्र पत्रों * पर से निम्न लिखित वंशावली तय्यार हो सकती है।

---

* देखो परिशिष्ट पहिला तथा दूसरा

नरवर्धन—वाज्रिणी देवी
|
राज्यवर्धन—अप्सरादेवी
|
आदित्यवर्धन—महासेन गुप्ता
|
प्रभाकरवर्धन—यशोमति
|

राज्यवर्धन	हर्षवर्धन	राज्यश्री

बाण का कथन है कि इस वंश के राजा थाणेश्वर में राज्य करते थे। परन्तु इ० स० ६३१ से ६४३ के अन्दर भारत भ्रमण करने वाला प्रसिद्ध चीनी यात्री हयुएनत्सङ्ग लगभग इ० स० ६४३ में हर्ष को मिला था। उस समय हर्ष के विस्तृत साम्राज्य के अनेक मुख्य नगरों में से कन्नौज भी एक मुख्य नगर था। इस पर से उसने कन्नौज को ही इस वंश के राजाओं की राजधानी बतलाई है, परन्तु वास्तव में इस वंश के राजाओं की राजधानी थानेश्वर ही थी।

पुष्प भूति

इस वंश के नरवर्धन, राज्यवर्धन तथा आदित्य-वर्धन इत्यादि राजाओं का इतिहास अभी तक प्राप्त नहीं हुआ किन्तु बाण कविने पुष्प भूति का थोड़ा बहुत इतिहास दिया है। वह शैव सम्प्रदाय का राजा था। दक्षिण के साधु भैरवाचार्य से उसकी भेट हुईथी। इस साधुने अपने ब्राह्मण शिष्य पाताल स्वामी द्वारा ब्रह्मराक्षस से प्राप्त अट्टहास नामी बड़ी तलवार पुष्पभूति को दी। एक समय भैरवाचार्य ने महाकाल हृदय नामक महामंत्र के प्रताप से अट्टहास तलवार द्वारा भूत को बध करनेका पुष्पभृति से निवेदन किया और टीटिभ, पातालस्वामी तथा कर्णताल नामक तीन मनुष्यों को सहायतार्थ भेजनेका वचन दिया। वह अपनी अट्टहास तलवार को लेकर निश्चित स्थान पर गया और भैरवाचार्य ने मंत्रों का पाठ किया, इस पर से नाग श्रीकण्ठ (जिस के नाम से श्री कण्ठ देश कहा जाता है) प्रगट हुआ। पुष्प भूति ने उसे हाथ से ही पटक दिया, और ज्यूंही वह उस पर तलवार से घाव करने को था त्यूंही उसकी तलवार तथा नाग

के बीच में एक सुन्दर रमणी दृष्टि गोचर हुई। पुष्प भूति के पराक्रम से प्रसन्न होकर उसने मुंह मांगा वर मांगने को कहा। राजा ने अपने लिये न मांगते हुए भैरवाचार्य की जय चाही। रमणी बोली "तथास्तु, तथा उसकी इस मानसिक उदारता एवं शिव की प्रगाढ़ भक्ति के बदले उसे सूर्य्य चन्द्र सम तीसरा प्रतापी पुरुष होने का, तथा बड़ा वंश चलाने का वर दिया। इस वंश के राजे पृथ्वी पर अपना अधिकार करेंगे तथा बहुत प्रख्यात होगें। शुचि, सौभाग्य, सत्य, त्याग, धैर्य्यादि गुणों के कारण वह वीर पुरुष कहलायेगें। इस वंश में सब द्वीपों का अधिपति, हरिश्चन्द्र सम चक्रवर्ती तथा मान्धाता समान त्रिभुवन विजयी श्री हर्ष नामक राजा होगा और कमल चिन्ह युक्त यही हाथ उस के छत्र को पकड़ेगा" इतना कह वह अन्तर्धान हो गई। भैरवाचार्य्य भी पुष्पभूति को प्रणाम कर आकाश की ओर लीन हो गया। श्री कण्ठ यह कह कर कि काम पड़े पर बुला लेना धरती में समा गया। पुष्पभूति भी टीटिभ पाताल स्वामी और कर्ण ताल को लेकर अपने घर आया। टीटिभ कुछ कालानन्तर चला

गया और दूसरे दोनों पुरुषोंने राजा की नौकरी करली, बाण कविने पुष्पभूति का इतना ही इतिहास दिया है।

इस के पश्चात् इस वंश में अनेक राजा हुए परन्तु उनका इतिहास अभी तक प्राप्त नहीं हुवा। इ. स. ६०५ में जब प्रभाकर वर्धन गद्दी पर बैठा तब से फिर बाण ने इस वंशका इतिहास दिया है। प्रभाकर वर्धन को "प्रतापशील" भी कहा जाता था। पंजाब के गान्धार (पेशावर) और साकल (स्यालकोट) में राज्य करने वाले हूण लोगों को उसने हराया था। सिन्ध के राजा तथा राजपूताना के गुर्जर राजा को भी उसने पराजित किया। मालवा तथा लाट (भरुच) के राजाओं पर भी उसने विजय प्राप्त की *

प्रभाकर वर्धन

उसकी पत्नी का नाम यशोवति (यशोमति) था। एक समय जब राजा तथा रानी सो रहे थे तब

---

* हूणहरिणकेसरी सिन्धुराजज्वरो गुर्जरप्रजागरो गान्धाराधिपगन्धद्विपकूटपाकलो लाटपाटलपाटच्चरो मालव लक्ष्मीलता परशुः प्रतापशीलः (हर्ष चरित)

रानी ने यह विचित्र स्वप्न देखा, कि दो युवक तथा एक युवती उसका पेट चीर कर अन्दर आ रहे हैं; इससे वह चौंक उठी और चिल्लायी। यह स्वप्न यथार्थ निकला कुछ कालानन्तर यशोवति ने राज्य वर्धन को जन्म दिया। इस के तीन वर्ष पश्चात् श्रावण मास में यशोवति गर्भवती हुई और यथा समय उसने श्रीहर्ष को जन्म दिया। इस के दो वर्ष पश्चात् राज्यश्री नामक कन्या उत्पन्न हुई। इस समय यशोमति के भाई ने अपना आठ बरसका लड़का भण्डी राज कुमारों के सहवास में रखा। प्रभाकर वर्धन ने मालवा के गुप्त राजा के कुमार गुप्त और माधवगुप्त नामक राज कुमारों को भी अपने दोनों राजपुत्रों के साथ रखा, इस प्रकार यह चारों कुमार साथ रहने लगे। राजश्री भी दिनों दिन बढ़ने लगी। एक दिन प्रभाकर वर्धन ने निम्न लिखित 'आर्य्या श्लोक' किसी को गाते सुना

उद्वेगमहावर्ते पातयति पयोधरोन्नमन काले।
सरिदिव तटमनुवर्ष विवर्धमाना सुता पितरम ॥

जिस प्रकार वेग युक्त नदी निकट वर्ती किनारों को

अपने घेर में ले लेती है उसी प्रकार दिन प्रति दिन बढ़ने वाली लड़की पयोधरों के उन्नमन काल में अपने पिता को चिन्ता रूपी चक्र में डाल देती है।

इस को सुन प्रभाकर वर्धन ने अपनी कन्याका विवाह करने का निश्चय किया, और कन्नौज के मौखरि वंश के अवन्तिवर्मा नामक राजा के ज्येष्ठ पुत्र ग्रहवर्मा से धूम धाम पूर्वक विवाह करादिया। यहां हमें मौखरि वंश के इतिहास पर भी विचार करना होगा।

अशीरगढ़ से जो मुद्रा प्राप्त हुई है उसपर शर्व वर्मा का लेख है, उसमें कन्नौज के मौखरि वंश के राजाओं की वंशावली दी हुई है। वह इस प्रकार है

(१) महाराजा हरिवर्मा (२) महाराजा आदित्यवर्मा
(३) महाराजा ईश्वरवर्मा (हर्षगुप्ता का पुत्र)
(४) महाराजाधिराज ईशानवर्मा (उपगुप्ता का पुत्र)
(५) परम महेश्वर महाराजाधिराज शर्ववर्मा मौखरि

यह सूचि यहीं समाप्त नहीं होती। गुप्तवंशी राजाओंके अफसद के शिलालेख में सुस्थितवर्मा का नाम है, वह छठा राजा था। वराणिका (देव बर्नाक) के शिलालेख

में अवन्तिवर्मा का नाम है, वह सातवां राजा था इस राजा के ही पुत्र ग्रहवर्मा के साथ राज्यश्री का विवाह हुआ था। इन शिलालेखों के आधार पर मौखरि और गुप्त वंशी राजाओं की निम्न लिखित वंशावली तय्यार की जा सकती है।

मौखरि वंश

हरिवर्मा
|
आदित्यवर्मा (हर्षगुप्ता के साथ विवाह हुआ)
|
ईश्वरवर्मा (उपगुप्ता के साथ विवाह हुआ

ईशानवर्मा
|
शर्ववर्मा
|
सुस्थितवर्मा
|
अवन्तिवर्मा
|
ग्रहवर्मा (राज्यश्री से विवाह हुआ)

गुप्त वंश.

कृष्णगुप्त
|
हर्षगुप्त
|
जिवितगुप्त
|
कुमारगुप्त (ईशानवर्मा से युद्ध किया)
|
दामोदरगुप्त (शर्ववर्मा से लड़ता हुआ मृत्यु को प्राप्त हुआ)
|
महासेनगुप्त (सुस्थितवर्मा से लड़ा)

देवगुप्त
(इ. स. ६०६ में मारा गया जिस से मालवा के वंश का अन्त हुआ)

माधवगुप्त
(मगध का राजा)
|
आदित्यसेन (इ. स. ६७२)
|
देवगुप्त
|
विष्णुगुप्त
|
जीवितगुप्त

मालवा के गुप्त तथा कन्नौज के मौखरि वंशी राजाओं में पहिले से ही आपस में लड़ाईयां चलती थीं, ऐसा अफसद के शिला लेख से प्रकट होता है। इसकी पुष्टि बाण के " तिमिरैस्तिरस्कारो रवेः यो मौखराणां मालवैः परिभवः " इत्यादि वाक्य से भी होती है। आदित्यवर्मा की स्त्री हर्षगुप्ता उस के सम कालीन हर्षगुप्त की बहिन होगी। उपगुप्ता का परिचय देना कठिन है। मौखरि वंश के राजे ईशानवर्मा के समय से ही ऐश्वर्य्यवान हुए होगें, क्यों कि इस राजा-को महाराजाधिराज की उपमा दी गई है। ईशानवर्मा के पूर्व के तीन राजाओं को केवल महाराजा ही कहा गया है। मौखरि नाम केवल शर्ववर्मा के साथ लगाया गया है। मौखरि लोग उत्तर हिंदुस्तान के मुख्य क्षत्रिय थे ऐसा बाण के " सत्स्वप्यन्येषु वरगुणेषु अभिजनमेवाभि-रुध्यन्ते धीमन्तः। धरणीधराणांच भूभृन्मूर्ध्निस्थितो सकल भुवननमस्कृतो मौखरो वंशः॥ " इत्यादि वाक्य से प्रकट होता है। शर्ववर्माने हूण लोगों को हराया

था* उसका राज्य दक्षिण में विन्ध्या पर्वत से परे अशीर गढ़ तक, तथा पूर्व में लौहित्य (ब्रह्मपुत्र) तक विस्तार पा चुका था।

अवन्ति वर्मा नामक मौखरि राजा के कई शिला-लेख प्राप्त हुए हैं उन पर यहां विचार करना आवश्यक है। इन में यज्ञवर्मा, शार्दूल वर्मा और अनन्त वर्मा यह तीन ही नाम दीखते हैं। यह राजा अपने आप को मौखरिप्रसिद्ध किया करते थे, इससे प्रकट हुआ कि उनका वंश इस मुख्य वंश का शाखारूप होगा। इन के एक शिला लेख में " श्री शार्दूल इति प्रतिष्ठित यशः सामन्त चूड़ा मणिः ऐसा वाक्य है। इस लेख पर से ऐसा कहा जा सकता है कि वह सामन्त नाम से प्रसिद्ध थे। शर्ववर्मा और ईशानवर्मा तो महाराजाधिराज कहलाते थे। यह शाखा वंश गया में स्थापित हुआ होगा कारण कि वहां से यह शिला लेख प्राप्त हुए हैं।

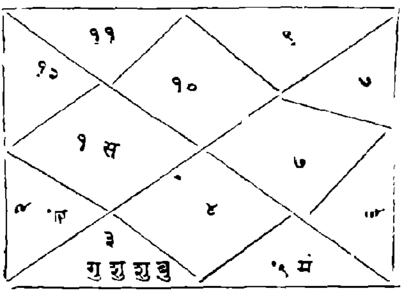
* अफसद के शिलालेख मे " यो मौखरेः समितिषूद्धत-हूणसैन्यावगलद्घटा विघटयन्नुव रणानाम्॥ इत्यादि लिखा है इस पर से यह प्रकट होता है कि मौखरि और हूण लोगों मे आपस में अनबन होगी।

अयोध्या के फैज़ाबाद जिले के भितारी गांव के मौखरि वंशीओं के कई सिक्के प्राप्त हुए हैं। इन सिक्कों पर ईशानवर्मा शर्ववर्मा और अवन्तिवर्मा; तथा हर्ष, प्रतापशील, शिलादित्य आदि राजाओं के नाम हैं। इस परसे ऐसा कहा जा सकता है कि गंगा तट के ऊपर के भाग पर गुप्त राजाओं के राज्य के पश्चात् मौखरि राजाओं का राज्य स्थापित हो गया था।

हर्ष का जन्म काल

मौखरिवंश का इतना परिचय दे चुकने पर अब हम हर्ष के जन्म काल पर विचार करेंगे उसकी जन्म तिथि किसी शिलालेख अथवा बाण कवि के हर्ष चरित्र में भी नहीं दी हुई। परन्तु बाणने "ततश्च प्राप्ते ज्येष्ठा मूलीये मासि बहुलासु बहुलपक्षद्वादश्यां व्यतीते प्रदोष समये समारुरुक्षति क्षपायौवने सहसैवान्तःपुरे समुद्पादि कोलाहलः स्त्री जनस्य" हर्ष चरित में ऐसा लिखा है। इससे हम हर्ष की जन्म तिथि निश्चित कर सकते हैं। बाण के लेखानुसार हर्ष ज्येष्ठ बदी बारह की रात के दस बजे के लगभग चन्द्र कृतिका नक्षत्र में उत्पन्न हुवा था। विक्टोरिया कालेज लश्कर (ग्वालियर) के प्रोफे-

सर आपटेने इस पर से गिनती कर ऐसा परिणाम निकाला है कि इ. स. ५८९ तथा इ. स. ५९० की ज्येष्ठ बद बारह के कृतिका नक्षत्र में उसका जन्म हुवा था। परन्तु इ. स. ५८९ की ज्येष्ठ बदी बारह सूर्य्यास्त के पश्चात् हुई थी इस लिये हमारे उपयोग की नहीं हैं। इ. स. ५९० की ज्येष्ठ बद बारह सूर्य्योदय से आरम्भ हुई थी और ४० घड़ी तक रही थी। उसदिन कृतिका नक्षत्र सूर्य्योदय के चार घण्टे के बादसे आरम्भ हुवाथा। श्री चिन्तामण वि. वैद्य ने गिन्ती कर हर्षका जन्म दिन रविवार ता. ४ जून इ. स. ५९० निश्चित किया है। बाण के लेख पर से अ. आपटे महाशय ने हर्ष की जन्म कुण्डली निम्न प्रकार तैयार की है।



परन्तु इस पर शङ्का उत्पन्न होती है। बाण कवि "मान्धाता किलैवंविधे व्यतीपातादिसर्वदोषाभिषङ्ग रहितेऽहनि सर्वे पूच्चस्थानस्थितेष्वेवं ग्रहेष्वीदृशी लग्ने भेजे जन्मः" इत्यादि वाक्य में यह कहा है कि हर्ष के जन्मदिन सब ग्रह उच्च के थे। परन्तु ५८९ वा ५९० की ज्येष्ट बदी बारह के ग्रह उच्च के नहीं थे ऐसा प्रतीत होता है, कदाचित् यह हर्ष के राज कवि की अत्युक्ति हो ऐसा अनुमान होता है।

प्रभाकर वर्धन की मृत्यु

अब हम फिर अपनी मूल कथा के सूत्र को पकड़ेगें। राज्य श्री के विवाह के थोड़े दिन पश्चात् हूण लोगों ने थानेश्वर पर चढ़ाई की। यह देख प्रभाकर वर्धनने राज्य वर्धन तथा हर्ष को अपने पास बुलाया। उस समय राज्य वर्धन की आयु "हथियार चलाने लायक" अर्थात् लगभग बीस बरस की थी। प्रभाकरवर्धन ने दोनों को सेना तथा अन्य सामग्री दे हूण लोगों को हराने निमित्त भेजा। वह जब हिमालय पर्वत की तराई में पहुचें तो हर्ष की इच्छा वहांपर आमोद प्रमोद करने

की हुई। इतने में एक दिन प्रभात में हर्ष ने स्वप्न में एक सिंह को आग में जलते देखा तथा उसके पीछे सिंहनी को भी कूदते पाया। यह देखकर प्रेम पाश सम्बन्धि उसके मन में नाना प्रकार के विचार आने लगे तथा वह कुछ उदास हो गया। इसी समय उसने एक हिरण को आते देखा। उसके गले में एक जामुनी रङ्गका कुछ बन्धा हुवा था। इस अपशकुन को देख वह चिन्तित हुवा। उस हिरण ने अपने गले में बंधी हुई चिट्ठी उसे दी। उसे पढ़कर उसने हिरण से पूछा कि " मेरा पिता किस रोग से पीड़ित है"। हिरण ने उत्तर दिया कि उसे बहुत ज्वर आ रहा है यह सुन हर्ष बिना खाए पीए, अकेला ही घोड़े पर सवार हो अपने घर को चल दिया। दूसरे दिन दोहपर को जब प्रभाकर वर्धन से भेट हुई तब उसकी अवस्था अधिक शोचनीय देख पुनर्वसु के कुल के रसायन नामी वैद्य को बुलाया और ' पिताजी कब अच्छे होंगे ' ऐसा पूछा। रसायन दूसरे दिन बतलाने की प्रतिज्ञा कर चला गया। अगले दिन हर्ष को रसायन के अग्नि प्रवेश का समाचार मिला। ' मेरे कुटुम्ब के लिये रसायन के शुद्ध प्रेम का यह परिणाम है ' ऐसा सोच कर

उसका हृदय द्रवीभूत होगया । इतने में पतिकी जीविता-वस्था में ही उसकी माता सती हो रही है, यह समाचार उसको आया । हर्ष ने यशोमति को बहुत समझाया परन्तु उसने किसी का न सुन पूर्व से ही सती होना स्वीकार किया कुछ दिन पश्चात् प्रभाकरवर्धन हर्ष को अच्छी शिक्षा दे स्वर्ग लोग को सिधार गया ।

ग्रहवर्मा का वध

इधर राज्यवर्धन ने हूण लोगों को मार भगाया, और फिर वह थानेश्वर पंहुचा, वहां उसने अपने माता पिता की मृत्यु के समाचार जाने। अब वह गद्दी का मालिक हुआ परन्तु बौद्धधर्मी राज्यवर्धन ने अपने अधिकार हर्ष को दे देने का विचार किया, और स्वंय सन्यास धारण करने की ठानी । अभी यह बात पूर्णरूपसे भी निश्चित नहीं हुई थी कि इनने में राज्यश्री का संवादक नामी दूत यह समाचार लाया कि जिस दिन प्रभाकरवर्धन की मृत्यु की बात फैली थी, उसी दिन मालवा के राजाने ग्रहवर्मा का वध कर कन्नौज में राज्यश्री को कैद किया, और ऐसी किंवदन्ती है कि वह आपके राज्य पर भी चढाई

करने की इच्छा रखता है। बाण ने इस राजाका नाम नहीं बतलाया, परन्तु कई साधनों द्वारा इसका नाम निश्चित हो सकता है। हर्ष के मधुवन के शिला लेख में निम्नलिखित श्लोक पाया जाता है।

राजानो युधि दुष्टवाजिन इव श्री देवगुप्तादयः
कृत्वा येन कशाप्रहारविमुखाः सर्वे समं संयताः

इस पर से यह स्पष्ट है कि राज्यवर्धनने देवगुप्त जैसे राजाओं को हराया था। हम यह भी जानते हैं कि राज्यवर्धन ने अपने राज्य काल में केवल दो ही युद्ध किये थे, एक-हूण लोगों के साथ और दूसरा मालवा के राजा के साथ। इस पर से यह सिद्ध हुआ, कि ग्रहवर्मा का वध करने वाला मालवा के राजा का नाम देवगुप्त ही था। डॉ० हुलॅका कथन है कि कदाचित् यह देवगुप्त, माधवगुप्त और कुमारगुप्त का बड़ा भाई हो। अभी हम लिख चुके हैं कि "मालवराजपुत्रौ" माधवगुप्त और कुमारगुप्त तो हर्ष के मित्र थे। अफसद की शिला लेख के "श्री हर्ष देव निज सङ्गमवांछयाच" से उक्त बात का समर्थन होता है। अब यह प्रश्न उपस्थित हो सकता हैं, कि जो भाई राजा

के परम मित्र थे, वह उसके बहनोई का क्यूं वध करेगें? इसका स्पष्टीकरण इस प्रकार हो सकता है कि माधवगुप्त और कुमारगुप्त, देवगुप्त से छोटे तथा सौतेले भाई होगें। आजकल भी सौतेले भाई प्रायः लड़ते रहते हैं तो उस समय भी कभी यही बात हो, और इसी कारण अभिमानी देवगुप्तने अपने छोटे भाइयों को अपने भाञ्जो अर्थात् प्रभाकरवर्मा के पुत्रों के पास भेज कर स्वयं मालवा का राजा बन बैठा होगा ऐसा समझना कठिन नहीं। प्रभाकरवर्धन की मृत्यु का समाचार सुन तथा राज्य वर्धन की अनुपस्थिति देख कर देवगुप्त ने ग्रहवर्मा पर चढ़ाई की होगी। उसकी पत्नी राज्यश्री को बन्दी बनाकर राज्यवर्धन पर भी हमला करने का विचार किया होगा। इस कार्य में उसने अपने मित्र कर्णसुवर्ण (मुर्शिदाबाद) के राजा शशाङ्क गुप्त से भी सहायता मांगी थी। कन्नौज के मौखरियों ने गुप्तवंश का राज्य मिटाकर ठीक ब्रह्मपुत्र तक अपना राज्य विस्तार किया था इस लिये मालवा के गुप्त वंशिओं के समान बङ्गाल के गुप्त वंशी भी मौखरियों से बदला लेने का विचार रखते होगें ऐसी धारणा हो सकती है। इसके अतिरिक्त

कन्नौज तथा थानेश्वर के राजा बौद्ध धर्मावलम्बी थे और पूर्व काल में तो धर्म भी राजाओं में वैमनस्य का कारण था। इसी हेतु शशाङ्कगुप्त ने सहायता देना स्वीकार किया होगा इसमें कोई अचरज नही।

राज्यवर्धनका वध

संवादक का समाचार सुन राज्यवर्धन क्रोध युक्त हुआ और लढाई की तैयारी करने लगा। अपने साथ उसने १०००० घोड़े स्वार लिये तथा अपने मामा का पुत्र भण्डीको सेनापति बनाया। हर्ष ने साथ जाने का आग्रह किया किन्तु राज्यवर्धन ने उसे समझा कर थानेश्वर में ही रहने को कहा। राज्यवर्धन ने देवगुप्त को हरा दिया तथा बहुत करके वह युद्धमें मारा गया। वहां से शत्रुओं के पंजे में से कन्नौजको छुड़ाने के लिये वह चल पड़ा। मार्ग में उसकी शशाङ्कगुप्त से भेंट हो गई। शशाङ्कगुप्त ने राज्यवर्धन की भारी सेना देख तथा अपनी निर्बलता पर विचार कर कपट करने का निश्चय किया, इस समय परस्पर झगड़ा मिटाने की जो युक्तियां अन्य क्षत्रिय राजा काम में लाते थे वही इसने भी की। शशाङ्क गुप्त ने अपने आप को राज्यवर्धन के आगे झुका

दिया तथा प्रायश्चित रूप में अपनी पुत्री का उससे विवाह कर देने का वचन दिया। विश्वासी राज्यवर्धन थोड़े पुरुषों को लेकर उसकी छावणी में प्रविष्ट हुआ। खाते समय शशाङ्कगुप्त ने राज्यवर्धन का वध कर झटपट अपने देश का रास्ता पकड़ा। इतने में कन्नौज के रहने वाले कोई गुप्त सरदारने भण्डी को भरमाने के हेतु राज्यश्री को मुक्त कर किसी अन्य स्थान पर भेज दिया।

इस समय हर्ष का वय कितना होगा, यह स्थिर करना चाहिये। बाण का कथन है, कि राज्यवर्धन तथा हर्ष में तीन वर्ष का, तथा हर्ष और राज्यश्री में दो वर्ष का अन्तर था। जब कुमारगुप्त और माधव गुप्त सङ्गी नियत हुए तब बाण के "अष्टादश वर्षवयसं" वाक्यानुसार कुमारगुप्त १८ वर्ष का था। इसके एक वर्ष बाद राज्यश्री का विवाह हुआ, तथा इसके एक वर्ष बाद, प्रभाकरवर्धन की मृत्यु हुई। यदि राज्यवर्धन और कुमारगुप्त को समानवयस्क मान लिया जाय तो इस समय राज्यवर्धन की आयु १९ वर्ष की होगी अर्थात् फिर हर्ष का वय १६ वर्ष का होना चाहिये

हर्ष अपने आप को राजा न कहला कर राजपुत्र शिलादित्य कहलाने लगा।

हर्ष की प्रवृत्ति

जब राज्यवर्धन देवगुप्त से लड़ने के निमित्त गया तब हर्ष को अनेक अपशकुन होने लगे, जिससे उसका मन चिन्तातुर हो गया। उसकी चिन्ता ठीक निकली तथा उसके भाई की सेना के कुन्तल नामी सरदार ने राज्य वर्धन के वध के समाचार हर्ष को सुनाये। यह सुन हर्ष विक्षिप्त हो गया। इस समय प्रभाकरवर्धन का मित्र, सेनापति सिंहनाद वहां था, उसने हर्ष को शान्त रहने का उपदेश दिया तथा राज्यव्यवस्था चलाने की सम्मति दी, किन्तु हर्ष ने इस पर कुछ भी ध्यान नहीं दिया। हर्ष एक साधारण पुरुष नहीं था, उसमें विशेष शक्ति एवं महान साहस था। वह भाग्यवान भी था। उसने संसारके समस्त राजाओं के पांव में बेड़ी पहिनाने की प्रतिज्ञा की, तथा अनुत्तीर्ण होने पर अपने आपको चिता के अर्पण करने का संकल्प किया। ऐसा विचार कर अपने युद्धमंत्री अवन्ति द्वारा दूर दूर देशों में ढंण्डोरा पिटवाया और स्वयं मालवा के देवदूत

का अन्त लाने का तथा अपनी भाग्यहीना बहिन राज्यश्री के उद्धार करने का निश्चय किया। केवल बंगाल को ही नहीं किन्तु समस्त भारतवर्ष के जीतने निमित्त हाथी घोड़े इत्यादियों का एक महासैन्य तैय्यार किया गया। ऐसा करने का यह कारण था कि हर्ष समझता था कि उसे अकेला तथा निस्सहाय समझ समस्त राजागण उसका सामना करने को तत्पर हो जायेंगे। इस प्रकार दिग्विजय करने का निश्चय स्थिर हुआ। हाथियों की सेना के मुख्य महावत स्कन्दगुप्त को सब ठीकठाक करने का आदेश दिया गया। स्कन्दगुप्त ने दिग्विजय करने के विचार को अयुक्त बतलाया और अपने कथन की पुष्टि में नम्रता पूर्वक अनेक प्राचीन दृष्टान्त दिये, परन्तु हर्ष के ध्यान में एक बात भी नहीं समाई और उसने सब तैयारी करने का आदेश दिया जिसे पूर्ण करने के निमित्त वह चल पड़ा। इसी समय हर्ष को अनेक शुभ शकुन हुए जिससे उसे अपनी दिग्विजय का पूर्ण भरोसा होयगा।

दिग्विजय के लिये कूच

इसके अनन्तर अनेक ज्योतिषियोंसे शुभ दिन मालूम कर कूच आरम्भ कर दी गई। सबसे पूर्व उसने थानेश्वर से थोड़ी दूर सरस्वती नदी के तटस्थ मन्दिर के पास अपना पड़ाव डाला। वहां का ग्राममुखिया उसके सत्कार के लिये आया और प्रथानुसार एक स्वर्ण मुद्रा भेंट की। यह स्वर्ण मुद्रा विशेष कर इसी अवसर के लिये ही ढलवाई गई थी। इस पर बैलकी आकृति थी। हर्ष जब इस मुद्रा को लेने लगा तब उसके हाथ से फिसल कर वह कीचड़ में मुखके बल गिर पड़ी और वहां बैल की आकृति पड़ गई। उपस्थित जनसमूह ने इसे अपशकुन समझा परन्तु हर्ष बोला " कि यह शकुन तो यह बतलाता है कि केवल मेरे आधिपत्य का ही प्रभाव सारी दुनिया पर पड़ेगा " हर्ष जैसे दूरदर्शी बलवान राजा को कोई विशेष उपदेश की आवश्यकता न होने पर भी उसके मंत्रियों ने उसे प्राचीन दृष्टान्तों द्वारा दुनिया के छल कपट इत्यादि से सावचेत रहने की अनुमति दी। इस उपदेश को वह ग्रहण कर दिग्विजय के लिये निकल पड़ा। प्रथम वह

सरस्वती के तीर पर आया और वहां के मुखिया के साथ आये हुए ब्राह्मणों को उसने १०० गांव इनाम में दिये।

प्राग ज्योतिष की ओर से हर्ष को भेंट

जिस समय हर्ष आगे बढ़ने की तैय्यारी में था उस समय प्राग ज्योतिष (आसाम) के राजकुमार की ओर से हंसवेग नामक एक विश्वास पात्र पुरुष मिलने को आया। उसने आभोग नामी एक अद्भुत छत्री तथा अन्य कई वस्तुओंकी भेंट दी तथा अपना सन्देश एकान्त में कहने की प्रार्थना की। एकान्त में उसने 'आभोग' का इतिहास बतलाया। पूर्वकाल में एक नरक नाम से प्रसिद्ध वीर पुरुष हुआ है, उसने वरूण से उसकी बाह्यहृदयरूपी यह छत्री प्राप्त की थी। इस नरक के वंश में भगदत्त, पुष्पदत्त और वज्रदत्त जैसे महान राजा हो गये हैं। इसी वंश में इन राजाओं के पश्चात सुस्थिरवर्मा नामक एक महाराजाधिराज हुआ है जो मृगाङ्क के नाम से प्रसिद्ध था। वह कैलास के महाराजा भूतिवर्मा के पुत्र चन्द्रमुखवर्मा के पुत्र स्थितिवर्मा का पुत्र था। उसकी पत्नीका नाम श्यामा

देवी था। उसके गर्भ से उत्पन्न भास्करद्युति अथवा भास्कर वर्मा नामक युवराज ने यह आभोग छत्री हर्ष को भेंट निमित्त भेजी थी तथा उससे मित्रता की याचना की थी। हर्ष ने यह भेंट प्रसन्नता पूर्वक स्वीकार कर मित्रता का वचन दे हंसवेग को रवाना किया।

राज्यश्री की खोज

हर्ष जब कन्नौज की ओर कूच करने की तय्यारी में था उस समय भण्डी आ पंहुचा। उसके साथ मालवा के गुप्त राजा के सब हाथी, बन्दी मनुष्य तथा कीमती खजाना था। दोनो भाइयों ने अपने मृत भाई के लिये बहुत शोक किया तथा भण्डी ने राज्यवर्धन के वध का आदि से अन्त तक का सब वृतान्त कह सुनाया। तत्पश्चात् हर्ष ने भण्डीसे राज्यश्री के समाचार पूछे, भण्डी ने उत्तर दिया कि लोगों में तो ऐसा सुना जाता है, कि जब राज्यवर्धन मर गया और गुप्त राजा ने कन्नौज पर कब्जा किया तब राज्य श्री ने अपनी सहेलियों सहित कैदखाने से भाग कर विन्ध्यापर्वतश्रेणि के जङ्गलों में आश्रय लिया हैं। उसकी खोज में गये हुए अनेक पुरुषो में से अभी तक कोई नहीं लौटा। यह

सुन हर्ष कहने लगा " कि ऐसे खोज करने वाले हमारे किस काम के हैं । राज्यश्री जहां गई होगी वहां मैं सब काम छोड़ कर जाऊंगा और तुम सेना लेकर शशाङ्कगुप्त से लड़ने जाओ " तदनन्तर मालवा के गुप्त राजा से प्राप्त खजाने का प्रबन्ध कर वह विन्ध्यापर्वत की ओर चल दिया और थोड़े दिन में ही वहां पहुंच गया।

दिवाकरमित्रसे भेट

इस प्रकार वह बहुत दिन तक जङ्गल में भटकता रहा परन्तु राज्यश्री का कुच्छ भी पता नहीं लग सका । एक दिन शरभकेतु नामक सरदार का पुत्र व्याघ्रकेतु एक जङ्गली पुरुष को अपने साथ ले हर्ष के पास आया। महाराज को प्रणाम कर कहने लगा कि भगवन् शबरों का सर्दार भूकम्प इस विन्ध्या पर्वत के जङ्गलों का स्वामी और सब जङ्गली लोगोंका नायक है । यह निर्घात उसका भांजा है तथा यहां के सब स्थलों से परिचित है । आप इसको जो आज्ञा देंगे वह उसे शीघ्र ही पालन करेगा । इस पर से हर्ष बोला कि यह सब प्रदेश तुम्हारा परिचित है तथा तुम घूमना भी

पसन्द करते हो, यह बहुत ठीक है परन्तु क्या तुमारे नायक अथवा उसके किसी अनुचर ने किसी स्त्री को जङ्गल में देखा है। निर्घात जे उत्तर दिया "महाराज आपकी आज्ञानुसार खोज हो रही है, यहां से एक कोसकी दूरी पर दिवाकरमित्र नामक ऋषि रहता है स्यात उसे इस सम्बन्ध में कुच्छ मालूम हो। यह सुन हर्ष को स्मरण हुआ, कि कदाचित् ग्रहवर्मा का एक बालस्नेही जो मैत्रयणि शाखा का था और जिसने वैदिक धर्म को छोड़ बौद्ध धर्म स्वीकारकर बाल्यावस्था से ही भगवे वस्त्र धारण किये थे यह वोही ऋषि हो, यह सोचकर उसकी उससे मिलने की उत्कण्ठा हुई उससे रास्ता पूछ कर हर्ष वहां गया, उस समय उसके साथ माधव गुप्त भी था।

दिवाकर ऋषि को प्रणाम कर वह सब खड़े रहे।

राज्यश्री का पता-लगना

ऋषि ने उन्हें बैठने को आसन दिया। कुछ वार्तालाप अनन्तर हर्ष ने पूछा "भगवन मेरी एक ही एक बहिन अपने पति के वध के बाद शत्रुओं से बचकर विन्ध्या पर्वत में आई है। हम इसे

खोजते खोजते थकगये हैं पर कोई पता नहीं लगता, यदि इस सम्बन्धि आपको कोई समाचार मिला हो तो कहने की कृपा करें। ऋषि उत्तर में बोले कि नहीं, हमें कोई समाचार नहीं मिला इतने में ही एक भिक्षुक ने आकर कहा " महाराज बहुत अनर्थ हो रहा है, एक बड़े कुल की अबला दुःखो से दग्ध हो सती होने की योजना कर रही है। आप कृपा कर इसका रक्षण करो। यह सुन हर्ष को अपनी बहिन होने का सन्देह हुआ और उसने भिक्षुक से तुरन्त पूछा यह रमणी यहां से कितनी दूर है, क्या वह अभी जीवित है, वह कौन है, कहां से आई है, और इस जङ्गल में कैसे आई है और सती क्युं होना चाहती है इत्यादि प्रश्न यदि आपने उससे पूछे हों तो कृपा कर उनके उत्तर कहिये। भिक्षुक ने आदिसे अन्त तकका सब वृत्तान्त कह सुनाया। यह सब वृत्तान्त राज्यश्री की जीवन कथा से मिलता था। तब हर्ष, दिवाकर मित्र तथा भिक्षुक के साथ उस स्थल पर गया। इस समय राज्यश्री की अन्तिम प्रार्थना के शब्द हर्ष ने सुने। मूर्च्छा से गिरती हुई राज्यश्री को बचाने के

लिये वह एकदम पहुंचा गया। इस प्रकार राज्यश्री का उद्धार हुआ। तदनन्तर सब दिवाकर मुनि के आश्रम को आये। आश्रम की पवित्रता से मुग्ध हो राज्यश्री ने बौद्ध सन्यासिनि होने की आज्ञा हर्ष से मांगी। हर्ष और दिवाकरमित्र ने ऐसा न करने को समझाया हर्ष कहने लगा कि हम अपने जीवनका उद्देश पूर्ण कर इकट्ठे ही भगवे वस्त्र धारण करेंगें। हर्ष अपनी भग्नि सहित गंगातटस्थ छावणी में लौट आया। बाण कवि ने अपने हर्ष चरित्र में यहां तक का सविस्तर वर्णन दिया है परन्तु आगे का भाग अधूरा छोड़ दिया है। हर्ष के राज्यकाल में प्रवास करने वाले प्रसिद्ध चीनी यात्री ह्युयेनत्सङ्ग ने हर्ष के पराक्रमों का वर्णन दिया है, उस पर से आगे का इतिहास जाना जा सकता है।

हर्ष का राज्याभिषेक

राज्यश्री के साथ हर्ष थानेश्वर को लौटा। थानेश्वर के कुटुम्ब में केवल वही अब जीवित था। राज्यवर्धनने विवाह नही किया था, ऐसा बाण के " कलंत्ररक्षत्विति श्रीस्ते भिक्षिशेऽधिवसति " वाक्य पर से पता लगता है इस लिये उसकी कोई भी सन्तान् नहीं थी। अब

थानेश्वर की गद्दी का उत्तराधिकारी केवल हर्ष ही था। मण्डी की सम्मति तथा सर्वानुमति से इ. स. ६०६ में वह सिंहासनारूढ़ हुआ। ह्युयेनत्सङ्ग ने लिखा है कि गद्दी पर बैठने और न बैठने का प्रश्न कुछ काल तक हर्ष के विचाराधीन रहा। परन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि यह शङ्का उसे कन्नौज की गद्दी के सम्बन्धमें हुई होगी हर्ष चरित में " अवन्तिवर्मणःसूनुरग्रजो ग्रहवर्मा ". ऐसा कहा है, इस पर से यह मालूम होता है कि ग्रहवर्मा, अवन्तिवर्मा का सबसे बडा पुत्र था, फिर उसकी पत्नी राज्यश्री का स्वत्व हटाकर किसी दूसरे को वह गद्दी किस प्रकार दी जासकती थी। इतने दुःखो के पश्चात राज्यश्री का उद्धार हुआ था तो फिर उसे गद्दी का सुख क्यो नहीं दिया जाय, इस प्रकार के प्रश्न हर्ष के सामने उपस्थित हुये। ग्रहवर्मा तथा राज्यश्री बौद्धधर्मावलम्बी थे, और हर्ष वास्तव में शैव था ऐसा उसके राजकाल के नौवें वर्ष के बंसखेर के शिलालेख के ' परम महेश्वर ' से तथा बाण के " विरचय्यपरमभगवतो नीललोहितस्यार्चाम् " से कहा जा सकता है। ऐसा होने पर भी वह बालकपन

के दुःखो के कारण बौद्ध हो गया था। कन्नौज के सिंहासन पर किसको बैठाना, यह निश्चित करने के लिये, कन्नौज से थोड़ी दूर रहने वाले बोधिसत्व अवलोकितेश्वर के मन्दिर में सब गये। इस साधु ने यह निर्धारित किया कि राज्यश्री कन्नौज पर राज करे और हर्ष उसका सहायक रहे, परन्तु वह राजा कि पदवी न ग्रहण कर केवल 'राजपुत्र शिलादित्य' से ही अपने आपको सम्बोधित करे। चीनी पुस्तक ' फाङ्ग चिह ' में भी ऐसा लिखा है कि इसके बाद हर्ष अपनी विधवा बहिन के साथ राज्य कार्य करता था। देवगुप्त की मृत्यु के पश्चात् थोड़े काल के लिये हर्ष ने उसका राज्य अपने आधीन रखा होगा तथा उसके वास्तविक उत्तराधिकारी माधवगुप्त को भी नहीं दिया ऐसा बाण के " अथालोच्य तत्सर्वमवनिपति स्वीकर्तुं यथाधिकारमादिदेशाध्यक्षान् " इत्यादि वाक्य से प्रकट होता है। हर्ष ने मालवा राज्य का धन तथा सिंहासन अपने अधिकारीयों के हाथ में सौंप दिया था। माधवगुप्त तो हर्ष के जीवन में उसका सहवासी ही रहा होगा। बहुत

समय व्यतीत होने पर हर्ष ने उसे गङ्गा तट के पूर्व का भाग देकर महाराजा की पदवी से भूषित किया होगा ऐसा आदित्यसेन के अफसदके शिलालेख से कहा जा सकता है।

दिग्विजय निमित्त पुनः कूच

पहिले जब हर्ष दिग्विजय के लिये निकला तो उस समय. राज्यश्री की खोज के कारण विघ्न पडगया था। अब उसके मिलने पर अपना उद्देश सफल करने के लिये फिर दिग्विजय निमित्त कूच की तैय्यारी की। इस समय उसके पास कन्नौज तथा थाणेश्वर की कुल सेना मिलाकर ५००० हाथी,५०,००० प्यादे तथा २०,००० घुड़सवार थे। अपने भाई राज्य वर्धन तथा कुमारगुप्त का वध करनेवाले शशाङ्कगुप्त से उसने किस प्रकार का वैर लिया यह निश्चित-रूप से मालूम नहीं हुआ। गुप्त वंशी संवत ३०० का अर्थात् इसवी सन ६१९ का ताम्रपत्र जो गंजम ग्राम से प्राप्त हुआ है, उसमें शशाङ्कगुप्त के आधीन किसी राजा के एक ब्राह्मण को एक गांव इनाम में देनेका

उल्लेख है। इस पर से यह प्रकट होता है कि शशाङ्क गुप्त राजा इ. स. ६१९ तक अपने राज्यमें स्थित था। अब ऐसा अनुमान हो सकता है कि या तो शशाङ्क गुप्त ने राज्यवर्धन तथा कुमार गुप्त के वधमें जो युक्ति की थी वही हर्ष के सामने भी की होगी अथवा हर्ष ने बौद्धधर्म के प्रभाव से उसे क्षमाकर वैर लेने के विचार का परित्याग किया होगा। परन्तु हर्षने इ० स० ६४३ में जब गंजम अथवा कंगोड़ पर चढ़ाई की थी तब शशाङ्कगुप्त का राज्य भी इसके आधीन आ गया होगा ऐसा कहा जा सकता है। इस सम्बन्धमें अधिक लेख तथा इतिहास न प्राप्त होने से अभी तक निश्चितरूप में कुछ भी नहीं कहा जा सकता।

हर्षकी हार

हर्ष के समस्त विजयी जीवन में एक ही हार का उल्लेख है। जिस प्रकार गुप्त सम्राट समुद्रगुप्तने दक्षिण में पांव बढ़ाना चाहा था, उसी प्रकार हर्षने भी नर्मदाके दक्षिणमें अपना राज्य विस्तार का प्रयत्न किया था। इस समय चालुक्य वंश का राजा सत्याश्रय, द्वितीय

पुलकेशी महाराष्ट्र का स्वामी था और हर्ष का एक बड़ा प्रतिस्पर्धी था। शिलालेखों से पता चलता है कि उसकी राजधानी वातापि (आजकल जिसे बादामी कहते हैं) थी। ह्युयेनत्सङ्ग के कथनानुसार उसकी राजधानी कभी, नासिक भी होगी। यह राजा बड़ा बलवान तथा साहसी था। वह हर्षके साथ ही अर्थात् ई० स० ६०८ में गद्दी पर बैठा। हर्षने ई० स० ६२० में उस पर चढ़ाई की, परन्तु पुलकेशी द्वितीय ने नर्मदा पर इतना दृढ़ प्रबन्ध किया कि हर्षको निराश हो लौटना पड़ा। इस सम्बन्ध में ह्युयेनत्सङ्ग लिखता है कि " इस समय महाराजा शिलादित्य (हर्ष) पूर्व से पश्चिम तक हमले करता था और इसके आसपास के सब प्रदेशों के राजा उसका आधिपत्य स्वीकार करते थे परन्तु महाराष्ट्र उसके आधीन नहीं हुआ। ह्युयेनत्सङ्ग के जीवन चरित्रमें भी लिखा है कि " शिलादित्य राजाके प्रवीण होने तथा उसके सेनापतियों के सदा विजय लाभ करने पर भी इन की पुलकेशी द्वितीय के सामने कुछ भी नहीं चली, इस समय भारत वर्षमें एक इसवी सन में सिंहासनारूढ़ राजे राज्य

करते थे और नर्मदा नदी उनके राज्यों की सीमा थी। एक शिलालेख में पुलकेशी द्वितीय का वर्णन "समर संसक्त सकलोत्तरापथेश्वर श्रीहर्षवर्धन पराजयोपलब्ध परमेश्वरापर नामधेयः सत्याश्रयः श्रीपृथ्वीवल्लभो महाराजाधिराजः" ऐसा आया है। इस परसे कहा जा सकता है कि हर्ष 'सकलोत्तरापथेश्वर' अर्थात् अखिल उत्तरीय भारत का राजा था।

गुजरातकी जीतें

इ. स. ६३३ में हर्ष ने सौराष्ट्र के वल्लभी वंशके राजा दूसरे ध्रुवसेन (ध्रुवभट्ट) को हराया, वह भरुचके राजाके हां भाग गया, अन्तमें उसने हर्षसे सन्धि करली तथा उसको अपनी पुत्री विवाहमें देने का वचन दिया। उसने कर देना भी स्वीकार किया। इसी चढ़ाईमें हर्षने सौराष्ट्रमें स्थित आनन्दपुर ग्राम और सोरठ प्रान्त तथा सौराष्ट्रके उत्तर कच्छ प्रदेशको भी अपने आधीन किया होगा। भरुचके राजा दादाके दान पत्रसे ऐसा पता लगता है कि इ. स. ६४१ में पश्चिम का यह सब प्रदेश मालवाके आधीन था।

दिग्विजयका विस्तार

इस प्रकार हर्षकी दिग्विजयका वर्णन यत्र तत्र मिलता है परन्तु श्रृंखला बद्ध विस्तृत वर्णन कहीं भी देखने में नहीं आता।

ह्युयेनत्सङ्ग लिखता है कि " पूर्व से पश्चिम तक जो राजा लोग आधीन नहीं हुये थे उन पर इसने आधिपत्य जमाया, और बहुत काल तक उसके हाथी और पैदल सैनिक अपने युद्ध वस्त्रोंसे सुशोभित रहे। हर्षने समस्त राजाओं पर विजय लाभ की इसका वर्णन आगे किया जायगा इस स्थल पर बाण कवि के हर्ष चरित के निम्न वाक्य विचारणीय हैं।

अत्र बलजिता निश्चलीकृता स्खलन्तः कृत्तपक्षाः क्षितिभृतः। अत्र प्रजापतिनाशेषभोगिमण्डलस्योपरि क्षमाकृता। अत्र पुरुषोत्तमेन सिन्धुराजं प्रमथ्य लक्ष्मीरात्मीयाकृता अत्र बलिना मोचितभूभृद्वेष्टनो मुक्तो महानागः। अत्र देवेनाभिषिक्तः कुमारः।

अत्र परमेश्वरेण तुषारशैलभुवो दुर्गाया गृहीतः करः।
अत्र लोकनाथेन दिशां मुखेषु परिकल्पिता लोकपालाः॥

इन सब वाक्योंके दो अर्थ हो सकते हैं इन वाक्यों के एक अर्थसे हर्षके दिग्विजय पर एक दृष्टिपात कर सकते हैं। वह इस प्रकार है कि " इस विजेताने कई राजाओंको (उनके अपने राज्यमें) स्थिर कर दिया, और उनके सहायकोंको मार भगाया। इस प्रजापतिने सब राजाओं तथा सरदारोंको क्षमा प्रदान की (और राज्य करने दिया) इस पुरुषोत्तमने सिन्ध का राज्य जीत कर उसका धन आधीन कर लिया। इस बलवान राजाने राजा (कुमार) को हाथीकी सूंडसे छुड़ा कर हाथीको भगा दिया। इस महा ऐश्वर्य्य वालेने हिमालय पर्वतके दुष्प्राप्य देशोंसे भी कर लिया। इस लोकनाथने भिन्न भिन्न देशोंमें रक्षक तथा अधिकारी नियत किये " इन वाक्यों पर से तो यह प्रकट होता है कि हर्षने भारतके मुख्य भागों पर आक्रमण किये थे और प्रत्येक राजाको अपने राज्यमें स्वतंत्र राज करने की स्वीकृति दी थी। इस समय ऐसा नियम नहीं था कि जीतने वाला राजा दूसरे राज्यों को अपने राज्य में जोड़ ले, किन्तु पराजित राजा, विजेता का प्रभुत्व स्वीकार कर उसको

कुछ कर दे तथा उत्सव इत्यादि अवसरों पर दरबार में उपस्थित हो, इतना ही पर्याप्त था । हर्ष ने भी इसी नियम का अनुसरण किया होगा, ऐसा प्रकट होता है। बाणने उपरोक्त वाक्यों में कई देशों के नाम भी दिये हैं, हिमालय के आगे का प्रदेश कदाचित् नैपाल हो । हर्षने जिस कुमार को राजा बचाया था वह प्राग्ज्योतिष (आसाम) का भास्करवर्मा उपनामधारी कुमार राजा ही होगा । यह कुमार राजा हर्ष का मित्र बना था यह पूर्व लिखा जा चुका है । बाण का कहना है कि हर्षने कुमार राजा को हाथी की सूंढ से छुड़ाया था । यह कथा इस प्रकार है कि जिस हाथी पर हर्ष सवारी कर रहा था, उस हाथीने कुमारराज को अपनी सूण्ड में पकड़ लिया । हर्ष का बल और साहस बड़ा चढ़ा था, इस लिये उसने तलवार से उसकी सूण्ड काट डाली और कुमार राजा को मुक्तकर हाथी को जङ्गल में हांक दिया । इ. स. ६०८ में गद्दी पर बैठने के अनन्तर छै वर्ष में ही अर्थात् इ. स. ६१४ तक हर्ष ने अपनी दिग्विजय समाप्त की । इसके पश्चात् यत्र तत्र जो उसने विजय लाभ की वह इस से भिन्न हैं ।

संक्षेप रूप में उसने गङ्गा पार का हिमालय से नर्मदा तक का सब प्रदेश तथा नैपाल, मालवा, गुजरात काठियावाड़ इत्यादि सब प्रदेशों पर अपना आधिपत्य जमाया। पूर्व काल के गुप्त मालव इत्यादि राजाओं के समान उसने भी अपना संवत निकाला था। उसका प्रथम वर्ष इ. स. ६१४ से नहीं किन्तु इ. स. ६०८ से आरम्भ होता है।

राज्य व्यवस्था

इतने बड़े विस्तृत राज्य पर अकेले शासन करना असम्भव होने से बाण के उपरोक्त कथनानुसार हर्षने सब स्थलो पर अधिकारी तथा रक्षक रखे थे, किन्तु हर्ष का ऐसा विचार था कि राजा की अपनी देखरेख विना कार्य्य ठीक नहीं चलता, इस लिये वह सब ठाट से आठ महीने तक अपने राज्य में घूमा करता था। वर्षा काल में घूमना बौद्ध धर्म में मना है, और तिस पर इतने ठाट से घूमना और भी कठिन है। अतः वर्षा ऋतु के चार महीने वह अपनी राजधानी में ही व्यतीत करता था। अपनी मुसाफरी में वह सद्गुणी लोगों को

इनाम और दुर्गुणीयों को दण्ड देता था। उस समय आज कल की तरह तम्बु नहीं थे परन्तु बाण के लेखानुसार पत्ते और शाखाओं से बने हुये " घूमते महल " प्रत्येक स्थल पर बनाये जाते थे। ऐसे महल राजा के दूसरी जगह जाने पर जला दिये जाते थे। हर्ष दरबारी ठाट में ही मुसाफरी करता था तथा उसके आगे आगे सोने के ढोल बजते थे।

हर्ष की राज्यव्यवस्था बहुत उत्तम सिद्धान्तों पर रची गईथी। राज्य का मुख्य कर सरकारी भूमि से उपजता था। प्रायः भूमिकर राज्य की समग्र आय का छठा भाग होता था। अफसरों को वेतन के स्थान में ज़मीन मिलती थी आजकल के समान उस समय बेगार की प्रथा नहीं थी। प्रजा पर कर का बोझ भी नहीं था। धर्म संस्थाओं को धन की सहायता देने का अच्छा प्रबन्ध किया गया था। उस समय आजकल के समान अनाचार भी नहीं था, किन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि चोरी तो जैसी आजकल है वैसी ही होगी कारण कि चीनी यात्री ह्युयेनत्सङ्ग कई

बेर चोर डाकुओं से घिरा था ऐसा वह स्वयं लिख गया है। साधारण अपराध के लिये कैद का दण्ड था और कई बेर बन्दी को भूखे भी मार दिया जाता था। भयङ्कर पाप वा राजद्रोह के लिये अपराधी के हाथ, नाक, कान, पैर इत्यादि काट डालना विहित था, तो भी हर्ष इसका पालन न कर, उन्हें देश निकाला देता था। छोटे अपराध के लिये जुरमाना किया जाता था। विष, देवता, बोझ, पानी इत्यादि दिव्य उपायों द्वारा अपराधी से दोष की स्वीकृति कराई जाती थी। प्रत्येक प्रान्त में एक विशेष अधिकारी द्वारा अच्छे अथवा बुरे कार्य्यों तथा जीत हार का वर्णन वृत्तान्त पत्र में लिखा जाता था। अभी तक कोई ऐसा पत्र हाथ नहीं लगा यह विचारणीय बात है। उस समय विद्या का प्रचार बहुत था और विशेषतयः ब्राह्मणों तथा बौद्ध यतिओं में इसका प्रसार अधिक था। मौर्य्य साम्राट अशोक जो हर्ष से नौ शताब्दि पूर्व हो चुका है, एक ही युद्ध कर संतुष्ट हो गया था, किन्तु हर्षने लगभग ३७ (सैंतीस) वर्ष तक युद्ध करने के पश्चात् ही अपनी तलवारको म्यान में डाला और अशोक का अनुकरण

कर शान्ति भोगने तथा दया धर्म के कार्य्य करने की इच्छा की ।

दया धर्म के काम

हर्ष के समय बौद्ध धर्म का विशेष प्रचार था। इस धर्म की दो शाखाए हैं (१) महायान (२) हीनयान। गौतम बुद्धने जब यह नया पन्थ* स्थापन किया तो वह केवल संन्यास वृत्तिवाला था, आत्मा के अस्तित्व पर उसका विश्वास नहीं था। वह निर्वाण अथवा मोक्ष मानता था। मनुष्य को संसार छोड़ जङ्गल में रह कर कर्म संन्यास करना चाहिये यही वह प्रतिपादित करता था। उसकी मृत्यु के पश्चात् उसके अनुयायीओं को यह ध्येय अच्छा नहीं लगा इस लिये वह भक्ति मार्ग का भी अनुकरण करने लगे, और वैदिक धर्मानुसार उपासना पूजा इत्यादि का भी उपदेश करने लगे। मनुष्य कर्म संन्यास न कर लोगों पर उप-

---

* वास्तव में यह केवल पन्थ है, परन्तु साधारणतया इसे लोग धर्म कहने लग पड़े है इस पुस्तक में पन्थ के अर्थ में धर्म शब्द का प्रयोग किया है —लेखक

कार तथा उपयोगी होने का यत्न किया करे ऐसा उन का मत हो गया। ऐसा कहा जाता है कि नागसेन ने नई शाखा स्थापित की थी। इसको महायान कहते हैं और बुद्ध की स्थापित शाखा हीनयान कहाती है। हर्ष को इन दोनों शाखाओं के लिये पूज्य भाव था, वह महा भक्त हो कर रहता था। मनुष्य जीवन से प्राणी जीवन बौद्ध धर्म में विशेष कीमती है इस सूत्र का पालन हर्ष बहुत सावधानी से करता था "धर्मरूपी बीज बोने का वह इतना प्रयत्न करता था कि खाना और सोना भी भूल जाता था यदि कोई जीवहिंसा अथवा मांसाहार करता तो उसे प्राण दण्ड दिया जाता था।

अशोक के पथ पर चलते हुए हर्ष ने समस्त राज्य में यात्रिओं, प्रवासियों गरीबों तथा रोगियों के निमित्त धर्मार्थ संस्थाए स्थापन की थीं। शहरों तथा गांवों में धर्मशालाएं बनाई गई थीं, जिन में खाना विना मूल्य दिया जाता था। रोगियों को औषधि देने के लिये वैद्यों का भी प्रबन्ध था। उसने हिन्दु धर्म

तथा बौद्ध धर्म सम्बन्धि अनेक संस्थाएं स्थापित की थीं। उस के द्वारा असंख्य मठ तथा गङ्गा तट पर सौ पाद ऊंचे अनेक स्तूप बनवाये गये थे। उस समय बौद्ध धर्म का न्हास हो रहा था, फिर भी उस के बनवाये हुये मठों में बौद्ध पन्थ के दो लाख साधु रहते थे*, साधारणतयः लोगों की बौद्ध धर्म में अधिक श्रद्धा थी। वैशाली तथा पूर्व बङ्गाल में जैन धर्म का बहुत प्रचार था परन्तु बौद्ध धर्म तथा पौराणिक धर्म (हिन्दु धर्म) से उस के अनुयायीओं की संख्या कम थी लोग अपना अपना धर्म शान्ति पूर्वक पालते थे। लोगों में धार्मिक झगड़े वैसे कम नहीं थे। राज्यवर्धन के घातक शशाङ्कगुप्त ने इ. स. ६०० में बुद्ध गया का बोधि वृक्ष गिरवा कर जलवा दिया तथा बुद्ध के पाद चिन्ह का पत्थर भी तुड़वा दिया था। उसने अनेक मठ नष्ट कर साधुओं को विखेर दिया था। मगध के राजा पूर्णवर्मा ने बोधि वृक्ष को पुनः स्थापन किया।

---

* देखो 'जर्नल ऑफ रॉयल एशियाटिक सोसाईटी (१८९१) पृष्ट ४१८ से ४११.

इस प्रकार कभी कभी लोग धर्मान्ध हो जाते थे परन्तु प्रायः लोगों में सहनशीलता ही थी ऐसा कहना चाहिये।

हर्ष और ह्युयेनत्सङ्ग

पूर्वकाल के हिन्दुओं में एक ही कुटुम्ब के लोग अपनी अपनी इच्छानुसार, शैव वैष्णव वा बुद्ध पन्थ पाल सकते थे, और और बौद्ध धर्म को हिन्दु धर्म से भिन्न नहीं माना जाता था किन्तु व्यवहार दृष्टि में यह आर्य्य धर्म की दो महा. शाखाएं समझी जाती थीं। हर्ष के कुटुम्ब में ही एक प्रकार की पूजा नहीं होती थी। पुष्पभूति शिवजी का भक्त था, प्रभाकरवर्धन सूर्य्य भक्त था, राज्यवर्धन और राज्यश्री बुद्ध के अनुयायी थे। स्वयं हर्ष शिव, सूर्य्य और बुद्ध तीनों का भक्त था। उसने इन तीनों के मन्दिर बनवाये थे। आरम्भ में हर्ष सम्मिलीय-पन्थ के हीनयान मार्ग में था परन्तु बाद में जब वह बङ्गाल में चीनी न्यायेश्वर ह्युयेनत्सङ्ग को मिला, तो उस के प्रभाव से महायान मत का अनुयायी हो गया। उस समय स्त्रियों को परदे में नहीं रखा जाता था, इस लिये वह और राज्य-

श्री दोनों ह्युयेनत्सङ्ग का धार्मिक संवाद सुनते थे। ह्युयेनत्सङ्ग कभी संवाद में हार न जाय इसकी चिन्ता हर्ष को बहुत रहती थी। एक वार इस प्रकार के संवादों के कारण ह्युयेनत्सङ्ग का जीवन सङ्कट में पड़ गया और हर्ष को यह डोण्डी पिटवानी पड़ी " कि इस न्यायेश्वर को यदि कोई छूयेगा तो उसके प्राणहरण किये जायेगें और जो कोई इस के विरुद्ध बोलेगा उस की जीभ काटली जायगी, परन्तु जो मेरी कृपा का लाभ उठा कर इसका उपदेश सुनने आयेगा उसे डरने की कोई बात नहीं।" इस डण्डोरे का यह परिणाम हुआ कि १९ दिन में ही ह्युयेनत्सङ्ग का कोई प्रतिद्वन्द्वी न रहा। ह्युयेनत्सङ्ग के विवादों से हर्ष इतना प्रसन्न हुआ कि उसने अपनी नई राजधानी कनौज में विशेष सभा कर अपने गुरु (ह्युयेनत्सङ्ग) के उपदेश सुनवाने का निश्चय किया। अपने साथ बहुत से आदमियों को ले कर वह गङ्गाके दक्षिण तट पर होता हुआ गया। गङ्गा के दूसरे किनारे किनारे काम रूप (प्राग् ज्योतिष) का कुमार राजा बहुत से पुरुषों सहित कन्नौज के लिये चल दिया। १९ दिन में सब कन्नौज पहुंच गये। उस समय

इ. स. ६४३ का फेब्रुआरी वा मार्च महिना होगा। कुमार राजा, वल्लभी के राजा तथा इस प्रकार अन्य १८ राजाओं ने हर्ष का स्वागत किया। इस समय विहार के नालन्द मठ के एक हज़ार के लगभग तथा जैन ब्राह्मण कुल मिला कर ३वा ४ हज़ार साधु वहां उपस्थित थे। इस अवसर के लिये गङ्गा तट पर एक विशेष मठ बनवाया गया था और एक सौ पाद ऊंचे मिनार में हर्ष के कद की बुद्धदेव की एक सोने की मूर्ति स्थापित की गई थी हर्षने शक्रदेव का वेश पहिना और कुमार राजाने ब्रह्मा का स्वरूप लिया था हर्षने इस समय अनेक कीमती भेट लोगों को दी। एक दिन अचानक उपरोक्त मठ में आग लग गई और उसका एक बड़ा भाग जल गया परन्तु हर्ष के आने से वह आग अद्भुत प्रकार से बुझ गई। स्तूप के ऊपर चढ़ कर जब हर्ष सृष्टि का सौन्दर्य देख उतर रहा था तो एक पागल मनुष्यने छुरी द्वारा उसका वध करना चाहा, परन्तु आसपास के मनुष्योंने उसे पकड़ लिया और इस प्रकार हर्ष की रक्षा हुई। अन्त में उसी आदमी ने स्वयं ही स्वीकार किया कि हर्ष बौद्ध लोगों पर विशेष प्रेम

रखता था इस लिये विरोधियों ने उसका वध करने को उसे उकसाया था। मठ को भी इन्हीं लोगों ने आग लगाई थी। हर्ष ने इन में से कई षड्यंत्रकारियों को दण्ड किया।

कन्नौज की सभा विसर्जन कर हर्ष ह्युयेनत्सङ्ग को ले कर प्रयाग पहुंचा। बहुत काल से यह प्रथा चली आती थी कि राजा प्रत्येक पांच वर्ष पश्चात् प्रयाग में एक महा सभा कर सब धर्मों के अनुयायियों तथा गरीबों को असंख्य वस्तुएं दान करता। इसी प्रथानुसार हर्ष इ. स. ६४३ में छट्ठी बार प्रयाग आया और एक बड़ी सभा की। इस समय भिन्न भिन्न स्थानों के लगभग ६ लाख मनुष्य उपस्थित थे और ७५ दिन तक भिन्न भिन्न क्रियायें की गईं। इस काल में असंख्य वस्तुओं का दान हुआ। सब क्रियाओं के समाप्त होने के दस दिन बाद ह्युयेनत्सङ्ग ने अपने देश को जाने की तैय्यारी की। लम्बे प्रवास निमित्त हर्ष ने और कुमारराज ने तीस हज़ार सोने के और दस हज़ार चान्दी के सिक्के हाथी पर लाद दिये

और उसके साथ उधित नामके राजा को भेजा। छ महिने में ह्युयेनत्सङ्ग जलन्धर पहुंचा और वहां एक मास रह कर अपने देश को चला गया, उधित उसे पंहुचा भारत पुनः लौट आया। ह्युयेनत्सङ्ग अपने साथ ६५७ पुस्तकें, सोने और चन्दन की बुद्ध की अने मूर्तिएं कुमार राजा से प्राप्त पुष्कल धन तथा ३५० अन्य वस्तुएं बुद्धकी स्मृति रूप में लेगया। उसने हमारे देश के ८४ ग्रन्थों का अनुवाद चीनी भाषा में किया है. इ. स. ६६५ में वह मृत्यु को प्राप्त हो गया।

हर्ष की मृत्यु.

हर्षने इ. स. ६४१ में चीन के महाराजा के पास अपना एक राजदूत भेजा था। वह वहां दो वर्ष रह कर उत्तर ले लौट आया। वह इ. स. ६४५ तक भारतवर्ष में रह कर चीन को लौट गया। उसके दूसरे वर्ष बाद अर्थात् इ. स. ६४६ में चीन क महाराज ने वङ्गह्युसेनत्से नामक एक दूसरा एलची ३० घोड़े स्वारों के साथ हर्ष के दरबार में भेजा परंतु उसके मगध देश में आने से पूर्व ही हर्ष की मृत्यु हो चुकी थी।

हर्ष के बाद उसका प्रधान अर्जुन गद्दी को दबा बैठा। उसने वङ्ह्युसेनत्से का अपमान किया और उसका माल लूट कर उसके साथियों को मार दिया। वङ्ह्युसेनत्से बचे हुये थोड़े मनुष्यों के साथ रात के समय भाग निकला, जिससे उसके जीवन की रक्षा हुई। वह भागता हुआ सीधा तिब्बत पंहुचा वहां के राजा ने उसे आश्रय दिया और उसके साथ १००० सवारों की सेना भेजी, और नेपाल के राजा ने सात हजार सिपाहियों की सहायता दी। इस सेना को लेकर वङ्ह्युयेनत्से लौटा और तिरहुत को आधीन कर लिया। वहां के तीन हज़ार सिपाहियों को उसने मार डाला और सात हजार आदमी डर के मारे नदी में डूब मरे! अर्जुन वहां हार गया और नई सेना इकट्ठी कर लड़ाई करने को फिर उद्यत हुआ। परंतु वङ्ह्युसेनत्से ने उसे फिर हराया और उसे कैद कर उसके आदमियों को भी बन्दी बना लिया। इस के उपरान्त अनेक पुरुषों को कैद कर तथा अर्जुन को साथ ले वङ्ह्युसेनत्से चीन को लौट गया।

मरने के बाद की व्यवस्था.

चीन के राजा की आज्ञा से वह फिर इ. स. ६५७ में भारत को आया, परंतु इस बार वह केवल बौद्ध धर्म के पवित्र मंन्दिरों को दान करने के हेतु से आया था। वह नैपाल के वैशालि और बुद्धगया के स्थानों पर गया वहां से काबुल उत्तर अफगानिस्थान, हिन्दुकुश तथा पामीर होता हुआ अपने देश को वापिस लौटा।

हर्ष के काल के राजे राज्य इत्यादि

हर्ष के अन्तिम दिनों में भारत की दशा कैसी थी तथा इसने किन किन राजाओं को अपने वश में किया था और कौन कौन सा राज्य उसके आधीन था, उसका वर्णन ह्युयेनत्सङ्ग के लिये लिखे हुये वृतान्तों से स्पष्ट होजाता है। यह सब वर्णन इस लघु पुस्तक में क्रमानुसार नहीं आसकता परंतु संक्षेप में हम यहां लिखते है, पर यह वृतान्त माना जा सकता है क्यों कि शिला लेखों तथा ताम्रपत्रों से इसका अनुमोदन हो सकता है।

भारत वर्ष के उत्तर से आरम्भ किया जाय तो प्रथम कपिश (काबुल) आता है। इस समय वहां

बौद्धधर्मी क्षत्रिय राजा राज्य करता था । इसका नाम ह्युयेनत्सङ्ग ने नहीं दिया । सिन्धु नदी का दूसरी तरफ का प्रदेश लम्पक नगर तथा गान्धार भी उसके आधीन था । गान्धार का राजवंश नष्ट हो चुका था, जहां तहां जो खंडहर दीखते थे वह हर्ष के पिता प्रभाकरवर्धन के समय के हूण लोगों के होंगे ऐसा अनुमान होता है । इसके बाद सिन्धु के उस पार ही सुवस्तु (स्वात) का उद्यान आता है, इस समय वहां बौद्ध धर्म का प्रचार पूर्ण रूपसे था । सिन्धु नदी की इस ओर सबसे पहिले काश्मीर का राज्य आता है उसके आधीन नक्षशिला, सिंहपुर और उरश के राज्य थे । उस समय वहां दुर्लभवर्धन राजा राज्य करता था 'राज तरिङ्गिणी' के अनुसार इस राजा ने वहां कर्कोट वंश की स्थापना की थी । वह इ. स. ६०१ में गद्दी पर आया और उसने ३६ वर्ष तक राज्य किया अर्थात् वह आदि से अन्त तक हर्ष का समकालीन था। वह बलवान था, परन्तु हर्ष के आगे उसे झुकना पड़ा और कर देना भी उसने स्वीकार किया था ।

इसके बाद टेक्का का देश, आता है जिसका मुख्य नगर साकल था। वहां पूर्व काल में मिहरकुल राज्य करता था। ह्युयेनत्सङ्ग के समय में साकल में खण्डहर ही दीखते थे। टेक्का का नाम ह्युयेनत्सङ्ग ने दिया है इसका भारतीय नाम क्या है यह ढूंडने का यत्न करना चाहिये। चचनामा * में लिखे हुये टाक नाम के साथ और भारतवर्ष के ३६ राजवंशों में से 'तक्षक' अथवा 'ताक' के साथ इसका सम्बन्ध होना चाहिये। मूलस्थानपुर (मुल्तान) और पर्वतनगर इस समय इसके आधीन थे। इस देश में केवल बौद्ध धर्म का ही प्रचार न था, किन्तु मुल्तान में सूर्यदेव का प्रख्यात मंदिर था, जहां भक्त लोग दर्शनार्थ जाते थे। इस देश का राजा पंजाब में सब से बलवान और प्रसिद्ध था। इसका देश काश्मीर और थाणेश्वर के बीच होने से हर्ष ने इसे हराया होगा ऐसा अनुमान हो सकता है।

---

* आठवीं सदी में अरबोंने जो सिन्ध पर हमला किया था उसका वृतान्त इस में दिया है।

इस के बाद सिन्ध आता है, इसकी राजधानी सिन्धु नदी के उस पार थी तथा पश्चिम और दक्षिण में, नदी पर स्थित, दो तीन छोटे राज्य इस के आधीन थे, अर्थात् आजकल के सिन्ध जितना ही उस समय का सिन्ध प्रदेश था। यद्यपि वहां का राजा बलवान था तथापि प्रभाकर वर्धन और हर्ष ने उसे हराया था, यह हम ऊपर लिख ही चुके हैं। ह्युयेनत्सङ्ग लिखता है कि यह राजा बौद्ध धर्मी शूद्र था। चच-नामा में लिखा है कि ब्राह्मण राजा 'चच' के पहिले एक वंश वहां राज्य करता था। इस वंश का पूर्वज दैवेज था और इसका अन्तिम राजा साहसीराय था। साहसी के मरने के बाद उसके दरबारी ने गद्दी घर दबायी और उसकी विधवा के साथ विवाह किया। इ. स. ६३२ में मुसलमानों ने सिन्ध पर पहिली वार चढ़ाई की थी उस समय वहां चच राजा था और ३५ वर्ष से वह राज्य कर रहा था ऐसा चचनामा के लेखक का कथन है। इ. स. ५९७ में उसने गद्दी छीन कर चालीस वर्ष तक राज्य किया। अब इ. स.

६४१ में जब ह्युयेनत्सङ्ग इस देश में आया, तब चंद्र राज्य करता होगा ऐसा अनुमान हो सकता है । वह बौद्ध था ऐसा चचनामें में भी कहा है । ह्युयेनत्सङ्ग ने उसे ब्राह्मण न कह शूद्र लिखा है, यह उसकी भूल होगी, ऐसा हम नहीं कह सकते, कारण कि चचनाम में तो केवल सुनी हुई बातों के आधार पर लिखा गया है, इसलिये उसका विश्वास नहीं किया जा सकता । इतिहास की कई बातों पर विचार करने से यह अनुमान होता है कि उस समय साहसिराय द्वितीय राज्य करता होगा चन्द्र नहीं क्योंकि चच ने मुल्तान और पर्वत जीत कर काश्मीर तक अपना राज्य विस्तार किया था और वह बहुत बलवान था । इस लिये चच ने ५९७ में नहीं किंतु ६४८ में गादी छीनी होगी और वह इ. स. ६८८ में मर गया होगा । इसके बाद चन्द्र ने इ. स. ६९५ तक राज्य किया होगा, और फिर उसका लड़का दाहिर गादी पर बैठा था जिसे इ. स. ७१२ में महम्मद कासिम ने हराया था ।

इसके बाद वल्लभी का राज्य आता है। वहां का राजा ध्रुवभट्ट क्षत्रिय था तथा हर्ष का दामाद था। वह रणसंग्राम में भी हर्ष के साथ जाया करता था, और इ. स. ६४३ की प्रयाग वाली सभा में वह उपस्थित था। हूण लोगों के त्रास से अयोध्या से भागा हुआ सेनापति भट्टारक ने लगभग इ. स. ४८५ में वल्लभी वंश स्थापित किया था। ताम्रपत्रों इत्यादि से ऐसा प्रतित होता है कि इस वंश के राजा शैव थे केवल ध्रुवभट्ट ही बौद्ध था।

इसके अनन्तर राजपुताना का गुर्जर राज्य आता है इसका मुख्य नगर भिनमाल था, वहां का राजा बौद्ध धर्मावलम्बी क्षत्रिय था, वह व्याघ्रमुख राजा का लड़का होगा। व्याघ्रमुख के राजकाल अर्थात् इ. स. ६२८ में प्रसिद्ध खगोलवेत्ता ब्रह्मगुप्त ने खगोल विद्या का पुस्तक रचा था। ह्युयेनत्सङ्ग के समय व्याघ्रमुख का यह पुत्र युवा होगा। हर्ष के पिता ने इस देश को जीता था, यह हम पूर्व कह चुके हैं, परंतु हर्ष की दिग्विजय में इस देश का नाम नहीं आता, फिर

भी ह्युयेनत्सङ्ग लिखता है कि वह हर्ष की सत्ता को स्वीकार करता था।

इसके बाद वल्लभी की दक्षिण में स्थित गुजरात का भृगुगच्छ वा भरुकच्छ (आज कल का भड़ोच) आता है। उपर लिखे गुर्जर वंश के किसी राजा ने यह देश बसाया होगा, और फिर इसका नाम गुजरात पड़ गया होगा। इस समय इस देशकी राजधानी भरुच (भड़ोच) थी और दादा द्वितीय राज्य करता था। ताम्रपत्रों द्वारा उसकी वंशावलि मालूम हो सकी है और "विपुलगुर्जरनृपन्वय प्रदीपतो" * इत्यादि वचन से उसका गुर्जर वंशी होना सिद्ध हो जाता है। इस वंशके राजा सूर्यदेव को पूजते थे, तथा भिनमाल में सूर्य्य का मन्दिर था इस लिये उपरोक्त वंश से इसका सम्बन्ध और भी दृढ़ होता है। इस वंश का पहिला राजा दादा प्रथम था वह लगभग इ. स. ५२८ में यहां आया था और उसने यह राज्य स्थापित किया। उसके बाद जयभट्ट और बाद दादा द्वितीय राजा हुआ। वह

* इन्डियन एन्टिक्वेरी पुस्तक ७ अंक ६२

स्वतंत्र राजा होने पर भी महासामन्त ही कहाता था। हर्ष ने वल्लभी के राजा ध्रुवभट्ट पर जब चढ़ाई की तब इसी दादा ने वल्लभी राजा को सहायता दी थी ऐसा कहा जाता है, इसका उल्लेख हम पूर्व कर चुके हैं।

इसके बाद ह्युयेनत्सङ्ग ने मोलपो, अथवा मालवा राज्य का वर्णन किया है। वह लिखता है कि "इसकी राजधानी मही नदी की आग्नेय दिशा की ओर थी....नैऋत्य दिशा में स्थित मालवा और ईशान दिशा में मगध, यह दो विद्या के मुख्य केंद्र थे" यह वर्णन समस्त मालवा का है, परन्तु ह्युएनत्सङ्ग का मोलपो आजकल का पश्चिम मालवा होना चाहिये, और महीनदी के उस पार की धार नगरी उसकी राजधानी होगी। जौनपुर के ईश्वरवर्मा के शिलालेख में धारा का नाम आता है, इस लिये यह नगरी इस समय भी होगी। इस पश्चिम मालवा का राजा कौन था, इस का पता नहीं लगा! ह्युयेनत्सङ्ग लिखता है, कि उसके वहां जाने के साठ वर्ष पूर्व शिलादित्य नामक दयालु नामक राजा राज्य करता

था। वह बौद्ध धर्मी था और उसके राजमहल के पास एक बौद्ध मंदिर था। " वह मक्खी को भी नहीं सताता, तथा उसके घोड़े और हाथियों को पानी छान कर दिया जाता, जिससे जीव हत्या न हो। जीवों की हिंसा नहीं करनी चाहिए यह बात उसने अपनी प्रजा को भली प्रकार समझा दी थी। इस प्रकार काम करता हुआ वह पचास वर्ष पूर्व राजगद्दी पर रहा " इ० स० ५३० में वह गद्दी पर बैठा था। राजतरिङ्गिणि में विक्रमादित्य का पुत्र मालवा का राजा—शिलादित्य था ऐसा उल्लेख है। उसके शत्रुओं ने उसे उसकी राजधानी से मार भगाया था, परंतु काश्मीर के प्रवरसेन द्वितीय ने उसका राज्य उसे वापिस दिला दिया। इस प्रवरसन ने इ० स० ५४० में नए काश्मीर को अपनी राजधानी बनाई। मालवा के विक्रमादित्य यशोधर्म राजा ने इस प्रवरसेन से पूर्व मत्रिगुप्त नामक राजा को राज्य करने के निमित्त भेजा था। विक्रमादित्य के पुत्र प्रतापशील उपनामधारी शिलादित्य से उसके शत्रुओं ने उसका प्रदेश छीन

लिया था और प्रवरसेन ने उसे वापिस दिलवाया था। ऐसा अनुमान हो सकता है कि यही प्रतापशील उर्फ शिलादित्य मालवा का—अर्थात ह्युयेनत्सङ्ग के मोलपो का राजा हो।

परन्तु यह कुछ सन्दिग्ध रह जाता है। ह्युयेनत्सङ्ग लिखता है कि हर्ष का दामाद—वल्लभी का राजा-ध्रुवभट्ट मालवा के शिलादित्य का भाञ्जा था परन्तु यहां उसने रिश्तेदारी के सम्बन्ध में गरबड़ की है, वास्तव में मालवा के शिलादित्य और ध्रुवभट्ट के पिता सगी बहिनों के लड़के अर्थात—मौसेरे भाई—होंगे। यदि इस प्रकार समझा जाय तो मालवा का शिलादित्य ही ह्युयेनत्सङ्ग के मोलपा का शिलादित्य होगा, यह निश्चयात्मकरूप से कहा जा सकता है। ऐसी धारणा हो सकती है कि जब ह्युयेनत्सङ्ग वहां गया हो तब शिलादित्य का पौत्र राज करता हो। इस वंश ने इ. स. ५२८ से ८४० तक पश्चिम मालवा में राज्य किया होगा।

अब क्रमानुसार उज्जयिनि आती है। चम्बल नदी द्वारा पश्चिम मालवा से विभाजित पूर्व मालवा की

यह मुख्य नगरी थी। अशोकने अपराधियों के दण्ड देने निमित्त यहां एक बन्दीगृह बनवाया था। यहां ब्राह्मण राजा राज्य करता था, इतना ही वर्णन हमें ह्युयेनत्सङ्ग से प्राप्त हुआ है। कभी हर्ष ने ही उसे राजा बनाया हो, अथवा वह स्वयं ही गद्दी दबा बैठा हो, और हर्ष ने उसकी ओर ध्यान न दिया हो ऐसा हो सकता है। हर्ष के राज्य लाभ के आरम्भ में वहां गुप्त वंश का प्रभुत्व था। पाटलिपुत्र और अयोध्या के गुप्त वंशी राजाओं ने इ. स. ४०० में मालवा और उज्जयिनि को जीत लिया था। स्कन्दगुप्त की मृत्यु के पश्चात गुप्त वंश का अन्त हो गया परन्तु इ. स. ४८० से इ. स. ५०० तक बुद्धगुप्त नामक राजा जमना से नर्मदा तक राज्य करता था, ऐसा हम एरण के शिला लेखों तथा उनके सिक्कों पर से कह सकते हैं। गुप्त सरदारों ने भिन्न भिन्न स्थानों पर भिन्न भिन्न शाखाएं स्थापित की थीं। इस वंश के देवगुप्त को राज्यवर्धन ने मार डाला था, इस के बाद हर्ष ने भी इ. स. ६०६ में उज्जियिनि को आधीन किया था। इस के उपरान्त येनत्सङ्ग ने ' चिचिरों ' तथवा झजोटि नगर तथा

तथा महेश्वरपुर इत्यादि का भी वर्णन किया है। चिचिर आजकल के बुन्देलखण्ड में होगा उसकी राजधानी ऐरण होगी ऐसा अनुमान किया गया है। महेश्वरपुर आजकल का ग्वालियर (अथवा कभी नरवर हो) ऐसा अनुमान कर सकते हैं। इन तीनों राज्यो में ब्राम्हण राजे राज्य करते थे और इन पर हर्ष का थोड़ा बहुत प्रभुत्व होगा ही ऐसा माना जा सकता है।

अब मध्यम हिन्दुस्तान में थाणेश्वर कन्नौज और दिल्ली आती है। इस समय गङ्गा और जमना नदीओं में से नहर निकाल कर आसपास के प्रदेशों को पर्याप्त पानी देने की योजना से यह भू भाग बहुत ही उपजाऊ हो गया था, इसी लिये यहां अनेक प्रसिद्ध राज्य हो चुके हैं। जन्मेजय के कुरु और पांचाल राज्यों समान, हर्ष के यह थाणेश्वर और कन्नौज थे तथा हर्ष भी जन्मेजय जैसा साम्राट बना था। हर्ष ने कन्नौज को अपनी राज्यधानी बनाई अतः यह नगर सब से बढ़ गया। मैखरि वंश के राजाओं ने गङ्गा की पूर्व दिशा में कन्नौज नगर को

बसाया था, हर्ष के पिता पितामहों ने गङ्गा के पश्चिम में थाणेश्वर को बढ़ाया था। हर्ष के कन्नौज को महत्व देने से पाटलिपुत्र फीका पड़ गया।

मौर्य्य सम्राट चन्द्रगुप्त ने पाटलिपुत्र को राजधानी बनाया था। अशोक ने उसे ही राजधानी रक्खा और फिर उसके बाद सब राजाओं ने उसका अनुकरण किया परन्तु जब गुप्त राजाओं ने अयोध्या अपनी राजधानी बनाई तो पाटलिपुत्र घटने लगा और हर्ष के काल में तो वह ८०० वर्ष में (अर्थात इ. स. ३०० की पूर्व से ५०० तक में) नष्ट प्रायः ही हो गया। इस समय दिल्ली एक छोटासा ग्राम था, पाण्डवों के काल में कुछ महत्व भोग कर फिर वह गिर गया। इ. स. की नवमीं शताब्दि में अनङ्गपालने फिर उसे महत्व दिया, और जब बारहवीं शताब्दि में पृथ्वीराज ने जयचन्द्र पर विजय लाभ की तब उस (दिल्ली) का महत्व कन्नौज से भी बढ़ गया। मुसलमानों ने पृथ्वीराज को जीत दिल्ली ही अपनी राजधानी बनाई, तो तब से आज तक वह नगर उन्नति पर ही है।

इसके अतिरिक्त ह्युएनत्सङ्ग ने गंगा के उस पार कई प्रदेश गिनाए हैं यथा परित्रिय (अलवर) श्रुघ्न (कदाचित् हरिद्वार) मतिपुर और ब्रह्मपुर (गढ़वाल) अहिछत्र, पिलशान, शंकष्य, अयोध्या, अल्हाबाद, और कौशाम्बी इत्यादि । इन सब पर हर्षका प्रभुत्व पूर्ण रूप से था ।

हिमालय की तराई में श्रावस्ति, कपिलवस्तु राम-ग्राम, कुशीनगर इत्यादि छोटे छोटे राज्यों के सरदार हर्ष का लोहा मानते थे।

इसके बाद ह्युएनत्सङ्ग मगध का वर्णन करता है । पूर्व काल में यहां पूर्णवर्मा नामक राजा राज्य करता था । कर्णसुवर्ण के शशाङ्कगुप्त ने वहां के बोधि वृक्ष को नष्ट कर दिया था, पूर्णवर्मा ने फिर से उसे स्थापित किया । मगध बौद्धधर्म का केंद्र स्थान था । इसी नगर में ही बोधिवृक्ष तथा बुद्धदेव के पादचिह्न वाला पत्थर था। बौद्धधर्म का प्रसिद्ध नालन्द मठ भी यहीं था । मगध से परे हिरण्यपर्वत अथवा मोंघेर,

चम्पा अथवा भागलपुर कज्जुगल अथवा राजमहाल तथा पौंड्रवर्धन अथवा रङ्गपुर इत्यादि थे। हमारे चीनी यात्री ने यहां के राजाओं के नाम नहीं दिये। इन राज्यों से लगा हुआ कामरूप वा आसाम का राज्य था। वहां के राजा भास्कर वर्मा अथवा कुमारराजा का उल्लेख पूर्व हो चुका है। इन सब पर हर्ष शासन करता था।

इस समय बङ्गाल में कर्णसुवर्ण, समतट और ताम्रलिप्ति (मिदनापुर) इत्यादि मुख्य नगर थे। कर्ण-सुवर्ण के शशाङ्कगुप्त उपनामधारी नरेन्द्रगुप्त ने राज-वर्धन का वध किया था, तथा वह बौद्धों को परास्त कर चुका था इस पर पूर्व ही विवेचन किया जा चुका है। इसके मरने के बाद इसका राज्य कुमारराजा को दे दिया गया। समतट अर्थात् पूर्व बङ्गाल में ब्राह्मण वंशी राजे राज्य करते थे। इस वंश के किसी एक बौद्ध संन्यासी से ह्युयेनत्सङ्ग की भेंट हुई थी। ताम्र-लिप्ति पर किसका अधिकार था यह पता नहीं लग सका परन्तु उपरोक्त तीनों नगरों पर हर्ष का प्रभुत्व था यह निर्विवाद है।

उत्तर भारत का विस्तार दक्षिण में ओद्र (ओरिस्सा) और कोंगड्ड (गंजम) तक है। यहां किसका राज्य था यह ह्युएनत्सङ्ग ने नहीं लिखा। अन्य साधनों से पता लगाना कठिन है; परन्तु कटक के जगन्नाथ के मन्दिर से प्राप्त ताड़पत्रों से ऐसा मालूम हुआ है कि ई० स० की सातवीं शताब्दी से बारहवीं शताब्दी तक वहां केसरी वंश के राजा राज्य करते थे। नैपाल का राज्य इस समय तिब्बत के आधीन था और यहां हर्ष का आधिपत्य था या नहीं यह सन्दिग्ध रह जाता है। दक्षिण में हर्ष के प्रतिस्पर्धी प्रवरसेन द्वितीय के आधीन कई राज रजवाड़े थे ऐसा ह्युयेनत्सङ्ग लिखता है। इससे हमारा सम्बन्ध नहीं है। यहां उल्लेख योग्य यही बात है कि जिस प्रकार प्रवरसेन हर्ष के साथ ही सिंहासनारूढ हुआ था, उसी प्रकार हर्ष के समान उसकी सत्ता भी सातवीं सदी के बीच में घट गई थी कारण कि कांची के नरसिंहवर्मा ने उसकी राजधानी बादामी को छीन उसे नष्ट कर दिया था।

भारतवर्ष से बाहर हर्ष का सम्बन्ध चीन से था यह बात पूर्व कही जा चुकी है। यदि एक सामान्य दृष्टिपात किया जाय तो हम कह सकते हैं कि नर्मदा के उत्तर में पूर्व से पश्चिम तक और उत्तर से दक्षिण तक लगभग सब ही स्थलों पर हर्ष की विजय पताका फहरा चुकी थी।

साहित्याकार राजा हर्ष कवि के रूप में

भारतवर्ष के राजे निरे वियाप्रेमी ही नहीं थे किन्तु उन में से कई, कई विषयों के पण्डित माने जाते थे। चक्रवर्ती सम्राट हर्ष के सम्बन्ध में विस्तार पूर्वक लिखने के अनन्तर, अब हम साहित्य-प्रेमी हर्ष के विषय में लिखकर यह चरित्र पूर्ण करेंगे। हर्ष का साहित्य से पुष्कल प्रेम था इस के दरबार में अनेक साहित्य प्रेमी लेखक रहते थे जिन्हे धनादि से भी महाराज से सहायता मिलती थी। इन में 'कादम्बरी और हर्ष चरित्र' का लेखक बाण और 'सूर्यशतक' का लेखक 'मयूर' मुख्य थे। हर्ष स्वयं भी महाकवि की पदवी से विभूषित किया जाता है। 'रत्नावली' 'नागानन्द' तथा 'प्रियदर्शिका'

इन्ही के रचित नाटक बतलाये जाते हैं । कईयों को इस पर सन्देह है । इतिहास में कुल तीन हर्ष हुये हैं। एक हर्ष बारहवीं शताब्दी में हुआ है, उसकी माताका नाम मामल्लदेवी तथा पिता का नाम हीर था । उसने 'नैषधीय चरित' नामी एक महाकाव्य की रचना की है। इसके अतिरिक्त वह अन्य आठ पुस्तकों का भी लेखक है। इसके लेखों में एक विशेषता यह है कि वह स्वरचित ग्रन्थों का नाम उनमें यत्र तत्र देही देता है, परन्त उसके किसी भी लेख में 'रत्नावली' नागानन्द और 'प्रियदर्शिका' का नाम नहीं और अपने नैषधीय चरित में एक स्थल पर वह कहता है कि "ताम्बूलद्वय मासनं च लभते यः कान्यकुब्जेश्वरात्।"

इस पर से यह कहा जा सकता है कि वह कन्नौज के राजा के पास से कर लेता था परन्तु हमारा चरित्र नायक हर्ष अपने आपको अपने काव्यों में "पादपद्मोपजीवी राजसमूह" कर के लिखता है अर्थात् स्वयं वह राजा था, इस लिये नागानन्द का राज कवि 'राजोपजीवी' हर्ष नहीं हो सकता यह स्पष्ट ही है।

दूसरा हर्ष इ० स० १११३ से ११२५ तक काश्मीर में राज्य करता था। यह हर्ष भी राजा था किन्तु धनिक के भाष्य के कई स्थलों पर से ऐसा पता चलता है कि वह उन तीन नाटकों का कर्त्ता नहीं, इस से यह सिद्ध हुआ कि हमारा चरित्रनायक हर्ष ही इन तीन नाटकों का रचयिता था। कई लोगों की ऐसी धारणा है कि श्रीहर्ष ने इन नाटकों को नहीं रचा किन्तु उसके दरबार के किसी कवि ने धन के बदले में यह नाटक लिखकर हर्ष का नाम लेखक रूप में रख दिया होगा। मम्मट के काव्य प्रकाश में एक स्थलपर लिखा है—

" श्रीहर्षादेर्धाविकादीनामिव धनम् " इस वाक्य पर से लोगों का ऐसा अनुमान होता है। दूसरे इसे सबल नहीं मानते। उनका कथन है कि ऐसा मानना कि धावकादि लेखकों को श्रीहर्ष के राजदरबार से धन की सहायता मिलती थी अतः उन्होंने यह नाटक लिख हर्ष के नाम से प्रसिद्ध कराये अनुचित है।

राजशेखर कृत ' कविविमर्श ' में निम्न लिखित श्लोक पाये जाते हैं।

भासो रामिलसोमिलौ वररुचिः श्री साहसाङ्कः कवि–
र्मेण्ठो भारविकालिदासतरलाः स्कंदः सुबन्धुश्च यः ।
दंडी बाणदिवाकरौ गणपतिः कांतश्च रत्नाकरः
सिद्धा यस्य सरस्वती भगवती के तस्य सर्वेऽपि ते ॥
कारणं तु कवित्वस्य न संपन्नकुलीनता ।
धावकोऽपि हि यद्भासः कवीनामग्रिमोऽभवत ॥
आदौ भासेन रचिता नाटिका प्रियदर्शिका ।
निरीर्ष्यस्य रसज्ञस्य कस्य न प्रियदर्शना ॥
तस्य रत्नावली नूनं रत्नमालेव राजते ।
दशरूपककामिन्या वक्ष्यस्यत्यन्तशोभना ॥
नागानन्दं समालोक्य यस्य श्री हर्षविक्रमः ।
अमन्दानन्दभीरतः स्वसभ्यमकरोत्कविम् ॥

उपरोक्त श्लोकों पर से नारायण शास्त्री नामक एक लेखक का मत है कि इ० स० पूर्व ५५२ स ४५७ में कोई हर्ष विक्रमादित्य नाम का राजा हो गया है और भास उपनामधारी धावक उसका राजकवि हुआ है । यह ठीक है कि धावक का अर्थ धोबी होता है और यह भी सत्य है कि भास धोबी था परन्तु कालिदास ने अपने

' मालविकाग्निमित्र ' नाटक में भास का उल्लेख किया है इस पर से यह सिद्ध ही है कि भास कालिदास से पूर्व हुआ होगा । इस लिये नारायण शास्त्रीने कल्हण की राजतरङ्गिणि में

तत्रानेहस्युज्जयिन्यां श्रीमान्हर्षापराभिधः ।
एकच्छत्रश्चक्रवर्ती विक्रमादित्य इत्यभूत् ॥

उक्त श्लोक पर से एक नया हर्ष ढूण्ड निकाला है। परन्तु जब तक ' कवि विमर्श ' पुस्तक अप्रकाशित है तब तक इस बातका निर्णय करना असम्भव है।

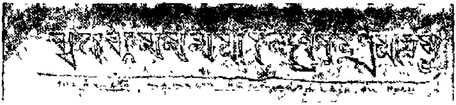
इन तीन नाटकों के उपरान्त हर्ष का नाम अप्रगट ' तापसवत्सराज ' तथा चैत्यवंदन और सुप्रभात इत्यादि स्तोत्रों पर भी देखने में आता है । परन्तु उपरोक्त दोनों स्तोत्र उसके लिखे हुये नहीं है ऐसा रा. रा. केशवलाल हर्षदराय ध्रुव ने अपने लेखों में सिद्ध कर दिया है * । स्थल संकोच के कारण इस पर अधिक विवेचन नहीं किया जा सकता।

भास और हर्ष की शैली में समता है तो इसपर से ऐसा कैसे कहा जा सकता है कि उक्त तीन

* ' नवजीवन अने सत्य ' पुस्तक ४ अंक ८१५.

नाटक भास ने ही लिखें हैं। ऐसे कवि कालिदास की शैली कहीं कहीं वाल्मीकी रामायण से मिलती है तो इस से क्या हुआ। बहुत कहें तो इतना कह सकते है कि हर्ष ने भास के ग्रन्थ पढ़े होगें और उनका प्रभाव उसकी रचनाओं पर पड़ा होगा। इन नाटकों का रचयिता श्रीहर्ष ही है यह बात निश्चित हो चुकी है। इस निर्णय का समर्थन चीनी यात्री इत्सिङ्ग के लेखों से होता है। वह लिखता है कि राजा शिलादित्यने बोधिसत्व जीमूतवाहन की कथा कवितारूप में लिखी थी। इस जीमूतवाहन को एक नाग के छुड़ाने के निमित्त स्वयं अधीनता स्वीकार करनी पड़ी थी। यह कविता गाई गई थी, और अनेक पुरूषों से उसने यह नाटक हावभाव नृत्य इत्यादि के साथ अभिनय करवाया था, और इस प्रकार उसी समयही इसको प्रजा प्रिय बना दिया था। इन सब बातों पर से ऐसा कहा जा सकता है उपरोक्त तीनों नाटक श्रीहर्ष ने स्वयं ही—वा अपने राज कवियों की सहज सहायता से—रचे थे। उसमें कवित्व शक्ति नहीं थी ऐसा मानने का कोई कारण नहीं।

श्री हर्ष के हस्ताक्षर निम्न प्रकार के हैं



'स्वहस्तो मम महाराजाधिराज श्रीहर्षस्य,'

हर्ष की शैली और कवियोंमें उसका स्थान

आर्य्यावर्त के राजे लेखक रहे हैं एसे अनेक दृष्टान्त दृष्टिगोचर होते हैं; और साहित्य में इस प्रकार का योग देना बन्द नहीं हुआ, यह आधुनिक इतिहास भी बतलाता है। हर्ष की शैली प्रायः सुगम तथा सरल है। कहीं कहीं कठिनता भी झलक पड़ती है। कालिदास इत्यादियों के समान उसकी शैली में मनोहरता नहीं किंतु फिर भी अन्य कवियों से किसी प्रकार उतरती नहीं है। यदि उसकी शैली के अत्युक्ति व्यङ्ग, द्वि अर्थ आदि दोष जो कहीं कहीं आ गये है निकाल दिये जांय तो उसका ढङ्ग लोकप्रिय तथा अनुकरणीय है। संस्कृत विद्वानों में उसे द्वितीय श्रेणि के पण्डितों में स्थान दिया जा सकता है। अपने तीनों नाटकों में हर्ष अपने आपको 'नि-

पुण्य कवि ' कहता है। ' प्रसन्न राघव ' का कर्त्ता जयदेव उसे ' हर्षोहर्षः ' (अर्थात् सरस्वती को आनन्द देने वाला) कहता है। इतना कहना तो अत्युक्ति जान पड़ती है। प्रथम वर्ग के कवियों यथा कालिदास, भवभूति इत्यादि से उतरता हुआ किंतु विशाख दत्त, भट्ट, नारायण इत्यादि से वह बढ़ कर ही है।

तब कहिए कि शरीर शक्ति बुद्धि शक्ति से सम्पन्न राजाओं के काल में भारत की प्रगति कितनी होगी ?

परिशिष्ट पहिला

मधुवन का ताम्रपत्र

इ. स. १८८८ के जेन्युअरी के महीने में वायव्य प्रान्तों के आज़मगढ़ के इशान कोन में सोलह कोसकी दूरी पर स्थित सगरी तहसील के नथुपुर परगने के मधुबन गांव में एक किसान का हल इस ताम्रपत्र से लगा, तब इसे बाहर निकाला गया। यह बीस तसु (गिरह) लम्बा और तेरह तसु (गिरह) चौड़ा है,

और ८ तोला है। इस ताम्रपत्र की तिथि हर्ष संवत २५ की माघसर छट्ठ है। हर्ष संवत इ० स० ६०६ से आरंभ होता है अर्थात् इस पत्र की तारीख इ० स० ६०६ के नवेम्बर वा डिसेंबर में आयेगी ताम्रपत्रका लेख इस प्रकार है।

१ ओम् स्वस्ति महानौहस्त्यश्वजयस्कन्धावारात् कपित्थिकायाः महाराजश्री नरवर्द्धनस्तस्य पुत्रस्तत्पादानुध्यातः श्रीवज्रिणीदेव्यामुत्पन्नः परमादित्यभक्तो—

२ महाराजश्रीराज्यवर्द्धनस्तस्य पुत्रस्तत्पादनुाध्यातः श्रीअप्सरोदेव्यामुत्पन्नः परमादित्यभक्तो महाराजश्रीमदादित्यवर्धनस्तस्य पुत्रस्तत्पादानुध्यातः श्रीमहा–

३ सेनगुप्तादेव्यामुत्पन्नश्चतुःसमुद्रातिक्रान्तकीर्तिः प्रतापानुरागोपनतान्यराजो वर्णाश्रमव्यवस्थापनप्रवृत्तचक्र एकचक्ररथ इव प्रजानामार्तिहरः

४ परमादित्यभक्तः परमभट्टारकमहाराजाधिराजश्रीप्रभाकरवर्द्धनस्तस्य पुत्रस्तत्पादानुध्यातः सितयशःप्रतानविच्छुरितसकलभुवनमण्डलपरिगृहीत–

५ धवदवरुणेन्द्रप्रभृतिलोकपालतेजाः सत्पथोपार्जितानेकद्रविणभूमिप्रदानसम्प्रीणितार्थिहृदयोतिशयितपूर्वराजचरितो देव्याममलयशोमत्यां

६ श्री यशोमत्यामुत्पन्नः परमसौगतः सुगत इव परहितैकरतः
परमभट्टारकमहाराजाधिराजश्रीराज्यवर्द्धनः राजानो युधि
दुष्टवाजिन इव श्रीदेवगुप्तादयः

७ कृत्वा येन कशाप्रहारविमुखाः सर्वे समं संयताः [।]
उत्खाय द्विषतो विजित्य वसुधां कृत्वा प्रजानां प्रियं
प्राणानुज्झितवानरातिभवने सत्यानुरोधेन यः [॥] तस्यानुज–

८ स्तत्पादानुध्यातः परममाहेश्वरो महेश्वर इव सर्वसत्त्वानुकम्पी
परमभट्टारकमहाराजाधिराजश्रीहर्षः श्रावस्तीभुक्तौ कुण्डधानी
वैषयिकसोमकुण्डकाग्रामे

९ समुपगतान् महासामन्तमहाराजदौस्साधसाधनिकप्रमातार
राजस्थानीयकुमारामात्योपरिकविषयपतिभटचाटसेवकादान्प्र-
तिवासिजानपदांश्च समा–

१० ज्ञापयत्यस्तु वः संविदितमयं सोमकुण्डकाग्रामो ब्राह्मणवा-
मरथ्येन कूटशासनेन भुक्तक इति विचार्य यतस्तच्छासनं
भुङ्क्त्वा तस्मादाक्षिप्य च स्वसीमा–

११ पर्यन्तः सोद्रङ्गः सर्वराजकुलाभाव्यप्रत्यायसमेताः सर्वपरि-
हृतपरिहारो विषयादुद्धृतपिण्डः पुत्रपौत्रानुगः चन्द्रार्कक्षि-
तिसमकालिना

१२ भूमिच्छिद्रन्यायेन मया पितुः परमभट्टारकमहाराजाधिराज-
श्रीप्रभाकरवर्द्धनदेवस्य मातुः परमभट्टारिकामहादेवी राज्ञी-
श्रीयशोमतीदेव्याः

१३ ज्येष्ठभ्रातृपरमभट्टारकमहाराजाधिराजश्रीराज्यवर्द्धनदेवपादानां च पुण्ययशोभिवृद्धये सावर्णिसगोत्रच्छन्दोगसब्रह्मचारिभट्टवातस्वामि–

१४ विष्णुवृद्धसगोत्रबह्वृचसब्रह्मचारिशिवदेवस्वामिभ्यां प्रतिग्रहधर्मणाग्रहारत्वेन प्रतिपादितः विदित्वा भवद्भिः समनुमन्तव्यः प्रति–

१५ वासिजनपदैरप्याज्ञाश्रवणविधेयैर्भूत्वा यथासमुचिततुल्यमयभागभोगकरहिरण्यादिप्रत्यायः अनयोरेवोपनेयाः सेवोपस्थानं च करणीयमित्यपिच ।

१६ अस्मत्कुलक्रममुदाहरद्भिरन्यैश्च दानमिदमभ्यनुमोदनीयं [।] लक्ष्म्यास्तडित्सलिलबुद्बुदचञ्चलायाः दानं फलं परयशः परिपालनं च ॥

१७ कर्मणा मनसा वाचा कर्तव्यं प्राणिने हितम् [।]
हर्षेणैतत्समाख्यातं धर्मार्जनमनुत्तमम् ॥

दूतकोऽत्र महाप्रमातारमहासामन्तश्रीस्कन्द गुप्तः महाक्षपटलाधिकरणाधि—

१८ कृतसामन्तमहाराजेश्वरगुप्तसमादेशाच्चोत्कीर्णं गुर्जरेण सम्वत् २० + ५ मार्गशीर्ष वदि ६.

परिशिष्ट दूसरा

बंसखेर का ताम्रपत्र.

शाहजहांपुर से लगभग बारह कोस पर यह ताम्र पत्र बंसखेर गांव में से १८९४ के सप्टेम्बर महीने में मिला था। यह १९ तसु (गिरह) लम्बा और १३ गिरह चौड़ा है। उसकी तिथि हर्ष संवत् २२ कि कार्तिक वद एक है। हर्ष संवत् ६०६ में आरम्भ होता है अर्थात् इस पत्र की तारीख इ० सं० ६२८ के अक्टोबर और नवेम्बर में पड़ती है। ताम्रपत्र में निम्न लिखा है।

१ श्री स्वस्ति महानौ हस्त्यश्वजयस्कन्धावाराच्छ्रीवर्धमानकोट्या महाराजश्रीनरवर्धनस्तस्य पुत्रस्तत्पादानुध्यातश्रीवज्रिणीदे-व्यामुत्पन्नपरमादित्यभक्तो महाराजश्रीराज्यवर्धनस्तस्य पुत्रस्तत्पदानु —

२ ध्यातश्रीमदप्सरोदेव्यामुत्पन्न परमादित्यभक्तो महाराजश्री-मदादित्यवर्धनस्तस्य पुत्रस्तत्पादानुध्यातश्रीमहासे[न] गुप्ता-देव्यामुत्पन्नश्चतुस्समुद्रातिकान्तकीर्तिप्रतापानुरागोप —

३ नतान्यराजो वर्णाश्रमव्यवस्थापनप्रवृत्तचक्र एकचक्रस्थ इव प्रजानामार्तिहरपरमादित्यभक्त परमभट्टारकमहाराजाधिरा-जश्रीप्र[भा]कर[व]र्ध[न]स्तस्यपुत्रस्तत्पा[दा] —

४ नुध्यातस्मितयशप्रतानविच्छुरितसकलभुवनमण्डलपरिगृही-
तधनदावरुणेन्द्रप्रभृतिलोकपालतेजास्सत्पथोपार्जितोनेकद्रवि-
णभूमिप्रदा[नसं]प्रीणितार्थिहृदयो

५ तिशयितपूर्वराजचरितो देव्याममलयशोमत्यां श्रीयशोमत्या-
मुत्पन्नपरमसौगतस्सुगत इव परहितैकरत परमभट्टारकमहा-
राजाधिराजश्रीराज्यवर्धनः । राजानो युधि दु--

६ ष्टवाजिन इव श्रीदेवगुप्तादयः कृत्वा येन कशाप्रहारविमुखा-
स्सर्वे समं संयताः । उत्खाय द्विषत विजित्य वसुधाङ्कृत्वा
प्रजानां प्रियं प्राणानुज्झितवानरातिभवने सत्यानुरोधे यः ।
तस्या—

७ [नुजस्त] त्पादानुध्यात परममाहेश्वरो महेश्वर इव सर्व-
सत्वानुकम्पी परमभट्टारकमहाराजाधिराजश्रीहर्षः अहिच्छ-
त्राभुक्तावङ्गदीयवैषयिकपश्चिमपथकस [म्बद्ध] मर्कटसा

८ गरे [स] मुपगतान्महासामन्तमहाराजदौस्साधसाधनिक-
प्रमातारराजस्थानीयकुमरामात्योपरिकविषयपतिभटचाटसेव-
कादीन्प्रतिवासिजानपदांश्च समाज्ञापयति [विदित] म --

९ [स्तु] यथायमुपरिलिखितग्रामस्स्वसीमापर्यन्तस्सोद्रङ्गस्स-
र्वराजकुलाभाव्यप्रत्यायसमेतस्सर्वपरिहृतपरिहारो विषया
[दु] द्धृतपिण्डपुत्रपौत्रानुगश्चन्द्रार्कक्षितिसमका—

१० [लीं] नो भूमिच्छिद्रन्यायेन मया पितु परमभट्टारकमहा-
राजाधिराजश्रीप्रभाकरवर्धनदेवस्य मातुर्भट्टारिकामहादेवी
राज्ञीश्रीयशोमतीदेव्या ज्येष्ठभ्रातृपरमभट्टारक—

११ महाराजाधिराजश्रीराज्यवर्धनदेवपादानाञ्च पुण्ययशोभिवृ-
द्धये भरद्वाजसगोत्रबह्वृचच्छन्दोगसब्रह्मचारिभट्टवालचन्द्र-
भट्टस्वामिभ्यां प्रतिग्रहधर्मेणाग्रहारत्वेन प्रतिपा—

१२ दितो विदित्वा भवद्भिस्समनुमन्तव्य प्रतिवासीजानपदैर-
प्याज्ञाश्रवणविधेयैर्भूत्वा यथा समुचिततुल्यमेयभागभोगकर-
हिरण्यादिप्रत्याया एतयोरेवोपनेयास्सेवोपस्थान [ञ्च] क—

१३ रणीयमित्यपि च । अस्मत्कुलक्रममुदारमुदाहरद्भिरन्यैश्च
दानमिदमभ्यनुमोदनीयं।लक्ष्म्यास्तडित्सलिलबुद्बुदचञ्चलाया
दानं फलं परयशःपरिपालनञ्च । कर्मणा म—

१४ नसा वाचा कर्तव्यं प्राणिभिर्हितं । हर्षेणैतत्समाख्यातन्ध-
र्मार्जनमनुत्तमं [।] दूतकोत्र महाप्रमातारमहासामन्तश्रीस्क-
न्दगुप्तः महाक्षपटलाधिकरणाधिकृतमहासामन्तम—

१५ हाराज [भान] समादेशादुत्कीर्णं

१६ ईश्वरेणेदमिति सम्वत् २० २

१७ कार्त्ति वदि १ [।।]

१८ स्वहस्तो मम महाराजाधिराजश्रीहर्षस्य [।।]

समाप्त.

श्री सयाजी बालज्ञानमाला.

प्रकाशित गुजराती पुस्तकें.

१	गिरनारनुं गौरव (सचित्र)	०–६–०
२	ऋतुना रंग	०–६–०
३	शरीरना सचो (सचित्र)	०–६–०
४	महाराणा प्रताप (सचित्र)	०–६–०
५	कोषनी कथा (सचित्र)	०–६–०
६	पाटण सिद्धपुरनो प्रवास	०–६–०
७	पावागढ	०–६–०
८	औरंगजेब (सचित्र)	०–६–०
९	मधपुडा (सचित्र)	०–६–०
१०	रणजितसिंह "	०–६–०
११	श्री हर्ष	०–६–०
१२	सूर्यकिरण (सचित्र)	०–६–०
१३	वातावरण	०–६–०
१४	ग्रहण (सचित्र)	०–६–०
१५	बाल नेपोलिअन	०–६–०
१६	कोषकी कथा हिन्दी (सचित्र)	०–८–०
१८	लोहानी लीला	०–६–०
१९	श्री हर्ष हिन्दी भाषामें	०–८–०